Year 11, Issue 44
Oct.-Dec., 2014

VASUDHA A CANADIAN PUBLICATION

EDITOR - PUBLISHER : SNEH THAKORE

कैनेडा से प्रकाशित साहित्यिक पत्रिका

वसुधा

संपादन व प्रकाशन
स्नेह ठाकुर

वर्ष ११ - अंक ४४, अक्टूबर-दिसम्बर २०१४

वापसी

पद्मश्री डॉ. श्याम सिंह शशि

शून्यता -
जीवन के बिखराव में
जूझती एक विवशता
केंचुली में जकड़ी
एक बदहवास सभ्यता
शहर के जंगल में भटकती
एक आदम ख़ामोशी
जहाँ हर दरवाजा
खुला नज़र आता है
पर स्पर्श होते ही बंद हो जाता है
और हम बुढ़ियाने लगते हैं
दस्तक देते-देते
कुछ नहीं मिलता
फिर चल पड़ते हैं
गवेषणा के लिए
कालाहांडी या बस्तर की ओर
शायद कोई भूला-भटका
अपना मिल जाए
नगर का दानव नहीं
बनवासी मानव मिल जाए!

वसुधा

संपादन व प्रकाशन : स्नेह ठाकुर

शीर्षक	रचयिता	पृष्ठ
संपादकीय		२
बापू के प्रति	सुमित्रा नन्दन पंत	३
वह अधनंगा फ़कीर	भारत यायावर	५
सपने	विजय कुमार	७
सड़क	डॉ. रामदरश मिश्र	८
सड़क दुर्घटना	हरि मंगल 'सलिल'	१२
शिक्षा को नवोन्मेषी बनाने की चुनौती	प्रो. गिरीश्वर मिश्र	१३
झलक	मोहन कल्पना अनुवाद : देवी नागरानी	१५
तुम	जितेन्द्र विसरिया	१९
अँधेरे में	गजानन माधव मुक्तिबोध	२०
मन एक नदी है	चन्द्र कांत सिंह	२९
पूजते हैं देवियाँ	लक्ष्मी शर्मा	३०
मृत्यु-पर्व	सुधा गोयल	३१
ख़ोज	सरोज श्रीवास्तव 'स्वाति'	३३
हिंदू धर्म की प्रासंगिकता	दिलीप चक्रवर्ती	३४
सही कीमत	इन्द्रदेव भोला इन्द्रनाथ	३६
मांद से ड्राइंग रूम तक	मुरलीधर वैष्णव	३८
गिरा आँख का पानी	अर्चना कृष्ण	४१
ऐसा क्यों है?	डॉ. अंशु अरोड़ा	४२
वापसी	पद्मश्री डॉ. श्याम सिंह शशि	१अ
पूजा के बाद	नरेश अग्रवाल	४४अ

रचनाओं में निहित विचार तथा मन्तव्य रचनाकारों के निजी विचार तथा मन्तव्य हैं। 'वसुधा' रचनाकारों के विचारों के लिए उत्तरदायी नहीं है। प्रकाशक की आज्ञा बिना कोई रचना किसी प्रकार उद्धृत नहीं की जानी चाहिए। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा।

रचनाएँ भेजने के लिए सम्पर्क पता :

16 Revlis Crescent, Toronto, Ontario M1V-1E9, Canada. TEL. 416-291-9534

वार्षिक शुल्क Annual subscription..........$25.00

डाक द्वारा By Mail, Canada & USA.........$35.00, Other Countries........$40.00

Website: http://www.Vasudha1.webs.com

e-mail: sneh.thakore@rogers.com

संपादकीय

भारतीय कोंसुलावास टोराण्टो के कोंसुलाध्यक्ष माननीय श्री अखिलेश मिश्रा जी ने १५ अगस्त स्वतंत्रता दिवस की संध्या पर एक भव्य आयोजन किया जिसमें ठाकुर साहब व मुझे आमंत्रित किया गया था. धन्यवाद, आभार. श्री अखिलेश मिश्रा जी ने अपने वक्तव्य में भारत की गरिमा को अक्षुण्ण रखते हुए भारत की भाषा हिन्दी में कुछ काव्य-पंक्तियाँ, जिसका उन्होंने अहिंदी-भाषी कनेडियन के लिए अनुवाद भी कर दिया था, कहकर सभी उपस्थित भारतीय प्रेमियों को गद्गद कर दिया. उनके निर्देशन में सभी कोंसुलाधिकारियों ने इस समारोह को सफल बनाया. बधाई.

'साउथ एशियन्स ऑफ ऑन्टेरियो' के प्रमुख श्री सैम चोपड़ा व श्रीमती सविता चोपड़ा ने भी १५ अगस्त हेतु एक भव्य आयोजन किया. हर वर्ष की भाँति इस वर्ष भी आयोजन सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ. इस बार भी मुझे वहाँ कविता-पाठ हेतु आमंत्रित किया गया था. धन्यवाद एवं आभार. हम सभी भारतीयों, प्रवासी भारतीयों, भारतवंशियों को एकजुट हो पूर्वजों के कठिन परिश्रम से प्राप्त इस स्वतंत्रता का, वीर सेनानियों के रक्त की एक-एक बूँद का मान रखते हुए भारत राष्ट्र को उच्चतम शिखर तक पहुँचाना है.

भारत के प्रधान मंत्री माननीय श्री नरेंद्र मोदी ने स्वतंत्रता दिवस पर लाल किले से हिन्दी में दिए गए एक घंटे से अधिक अपने भावात्मक आशु भाषण से जन-जन को आह्लादित कर दिया. उन्होंने पुन: यह सिद्ध कर दिया कि हिन्दी का सम्मान राष्ट्र का सम्मान है. माननीय मोदी जी ने स्वयं को प्रधान मंत्री की अपेक्षा प्रमुख सेवक कह कर भाषण के भव्य स्वरों को शब्दों की विनम्रता से भर दिया.

भारत के राष्ट्रपति माननीय श्री प्रणब मुखर्जी ने अपने स्वतंत्रता दिवस के वक्तव्य में 'सिद्धिर्भवति कर्मजा' उक्ति का उद्धरण दिया. अत: हिन्दी के उत्थान के प्रति भी यदि हम सभी हिन्दी प्रेमी - भारतीय, प्रवासी भारतीय एवं भारतवंशी - इस धारणा को लेकर चलते हुए प्रगति-पथ पर बढ़ें कि 'सफलता कर्म से ही उत्पन्न होती है' तो उन्नति का शिखर कैसे न मिलेगा!

विश्व हिन्दी सचिवालय, मॉरीशस के श्री गंगाधर सिंह सुखलाल, कार्यवाहक महासचिव के 'वसुधा' के प्रति व स्वयं के 'इंटरनेशनल वीमेन एक्सीलेंस अवार्ड 2014' से सम्मानित होने हेतु प्रशंसात्मक एवं उत्साहवर्धक पत्र हेतु धन्यवादसहित आभारी हूँ.

२०१२ में प्रकाशित मेरा उपन्यास 'कैकेयी चेतना-शिखा' जो राष्ट्रपति भवन पुस्तकालय में संग्रहित है तथा जिसका २०१३ में द्वितीय संस्करण भी प्रकाशित हो गया है, के उपरान्त मेरे दो शोध ग्रंथ 'चिंतन के धागों में कैकेयी - संदर्भ : श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण' व 'कैकेयी चिंतन के नव आयाम - संदर्भ : तुलसीकृत श्रीरामचारितमानस' के प्रकाशनोपरांत मेरा ४०० पृष्ठों से अधिक नया उपन्यास 'लोक-नायक राम' श्रीराम की कृपा एवं सभी हितैषियों की शुभ-कामनाओं से प्रकाशन हेतु चला गया है. आशा है कि इस उपन्यास को भी आप सबका पूर्ववत स्नेह प्राप्त होगा.

वर्ष २०१४ को विदा करते हुए, नवागत वर्ष २०१५ हेतु श्रीराम की अपार कृपा के लिए आँचल फैलाते हुए, विश्व शांति की कामना करते हुए 'वसुधा' अपने सभी लेखकों, पाठकों व सभी हितैषियों का धन्यवाद करती है. सभी लेखकों, पाठकों व सभी हितैषियों के अनन्य सहयोग ने ही 'वसुधा' के सम्पादन-प्रकाशन को मेरे लिए सम्भव एवं सफल बनाया है, सभी के प्रति आत्मिक आभार.

शुभ कामनाओं सहित, सस्नेह,

स्नेह ठाकुर

बापू के प्रति

सुमित्रानंदन पंत

तुम मांसहीन, तुम रक्तहीन, हे अस्थिशेष! तुम अस्थिहीन,
तुम शुद्ध-बुद्ध आत्मा केवल, हे चिर पुराण, हे चिर नवीन!
तुम पूर्ण इकाई जीवन की, जिसमें असार भव-शून्य लीन;
आधार अमर, होगी जिस पर भावी की संस्कृति समासीन!

तुम माँस, तुम्ही हो रक्त अस्थि, निर्मित जिनसे नवयुग का तन,
तुम धन्य! तुम्हारा निःस्व त्याग हो विश्व-भोग का वर साधन।
इस भस्म काम तन की रज से जग पूर्णकाम नव जग जीवन
बीनेगा सत्य अहिंसा के ताने-बानों से मानवपन!

सदियों का दैन्य तमिस्र तूम, धुन तुमने कात प्रकाश सूत,
हे नग्न! नग्न पशुता ढँक दी बुन नव संस्कृत मनुजत्व पूत!
जग पीड़ित छूतों से प्रभूत, छू अमित स्पर्श से, हे अछूत!
तुमने पावन कर, मुक्त किए मृत संस्कृतियों के विकृत भूत!

सुख-भोग खोजने आते सब, आए तुम करने सत्य खोज,
जग की मिट्टी के पुतले जन, तुम आत्मा के, मन के मनोज!
जड़ता, हिंसा, स्पर्धा में भर चेतना, अहिंसा, नम्र-ओज,
पशुता का पंकज बना दिया तुमने मानवता का सरोज!

पशु-बल की कारा से जग को दिखलाई आत्मा की विमुक्ति,
विद्वेष, घृणा से लड़ने को सिखलाई दुर्जय प्रेम युक्ति;
वर श्रम-प्रसूति से की कृतार्थ तुमने विचार-परिणीत उक्ति,
विश्वानुरक्त हे अनासक्त! सर्वस्व-त्याग को बना भुक्ति!

सहयोग सिखा शासित-जन को शासन का दुर्वह हरा भार,
होकर निरस्त्र, सत्याग्रह से रोका मिथ्या का बल-प्रहार;
बहु भेद-विग्रहों में खोई ली जीर्ण जाति क्षय से उबार,
तुमने प्रकाश को कह प्रकाश, औ अंधकार को अंधकार!

उर के चरखे में कात सूक्ष्म युग-युग का विषय-जनित विषाद,
गुंजित कर दिया गगन जग का भर तुमने आत्मा का निनाद!
रंग-रंग खद्दर के सूत्रों में नव-जीवन-आशा, स्पृहा, ह्लाद,
मानवी-कला के सूत्रधार, हर लिया यंत्र-कौशल-प्रवाद!

जड़वाद जर्जरित जग में तुम अवतरित हुए आत्मा महान,

यंत्राभिभूत जग में करने मानव-जीवन का परित्राण;
बहु छाया-बिंबों में खोया, पाने व्यक्तित्व प्रकाशवान,
फिर रक्त-माँस प्रतिमाओं में फूँकने सत्य से अमर प्राण!
संसार छोड़ कर ग्रहण किया नर जीवन का परमार्थ-सार,
अपवाद बने, मानवता के ध्रुव नियमों का करने प्रचार;
हो सार्वजनिकता जयी, अजित! तुमने निजत्व निज दिया हार,
लौकिकता को जीवित रखने तुम हुए अलौकिक, हे उदार!
मंगल शशि लोलुप मानव थे विस्मित ब्रह्मांड-परिधि विलोक,
तुम केंद्र खोजने आए तब सब में व्यापक, गत राग-शोक;
पशु-पक्षी-पुष्पों से प्रेरित उद्दाम-काम जन-क्रांति रोक,
जीवन-इच्छा को आत्मा के, वश में रख, शासित किए लोक!
था व्याप्त दिशावधि ध्वांत भ्रांत इतिहास विश्व-उद्भव प्रमाण,
बहु-हेतु, बुद्धि, जड़ वस्तु-वाद मानव-संस्कृति के बने प्राण;
थे राष्ट्र, अर्थ, जन, साम्यवाद छल सभ्य जगत के शिष्ट मान,
भू पर रहते थे मनुज नहीं, बहु रूढ़ि रीति प्रेतों समान -
तुम विश्व मंच पर हुए उदित बन जग जीवन के सूत्रधार,
पट पर पट उठा दिए मन से कर नव चरित्र का नवोद्धार;
आत्मा को विषयाधार बना, दिशि पल के दृश्यों को सँवार,
गा गा - एकोहं बहु स्याम, हर लिए भेद, भव भीति-भार!
एकता इष्ट निर्देश किया, जग खोज रहा था जब समता,
अंतर-शासन चिर राम-राज्य, औ' बाह्य, आत्महन-अक्षमता
हों कर्म निरत जन, राग विरत, रति-विरति-व्यतिक्रम भ्रम-ममता,
प्रतिक्रिया-क्रिया साधन-अवयव, है सत्य सिद्ध, गति-यति-क्षमता!
ये राज्य, प्रजा, जन, साम्य-तंत्र शासन-चालन के कृतक यान,
मानस, मानुषी, विकास-शास्त्र हैं तुलनात्मक, सापेक्ष ज्ञान;
भौतिक विज्ञानों की प्रसूति जीवन-उपकरण-चयन-प्रधान,
मथ सूक्ष्म-स्थूल जग, बोले तुम - मानव मानवता का विधान!
साम्राज्यवाद था कंस, बंदिनी मानवता पशु-बलाक्रांत,
श्रृँखला दासता, प्रहरी बहु निर्मम शासन-पद शक्ति-भ्रांत;
कारागृह में दे दिव्य जन्म मानव-आत्मा को मुक्त, कांत,
जन-शोषण की बढ़ती यमुना तुमने की नत, पद-प्रणत, शांत!
कारा थी संस्कृति विगत, भित्ति बहु धर्म-जाति-गत रूप-नाम,
बंदी जग-जीवन, भू-विभक्त, विज्ञान-मूढ़ जन प्रकृति-काम;
आए तुम मुक्त पुरुष, कहने - मिथ्या जड़-बंधन, सत्य राम,
नानृतं जयति सत्यं, मा भैः जय ज्ञान-ज्योति, तुमको प्रणाम!

वह अधनंगा फ़क़ीर!

भारत यायावर

गाँधी जब गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने लंदन गए थे, तब चर्चिल का दिया हुआ फ़िकरा पूरे लंदन में प्रसिद्ध हो चुका था - 'अधनंगा फ़क़ीर'! गाँधी अपने उसी लोकप्रिय वेश में लंदन गए थे - लँगोटी बाँधे, हाथ में लाठी लिए। साथ में उनके कुछ शिष्य और वह बकरी, जिसका दूध वे पिया करते थे। वहाँ के लोग यह देखकर दंग रह गए कि गाँधी लँगोटी और चप्पल पहने ब्रिटिश सम्राट के साथ चाय पीने और वार्ता करने बर्मिंघम पैलेस पहुँच गए। इन दोनों की मुलाकातों की व्यापक रूप में चर्चा हुई।

एक पत्रकार ने जब गाँधी से पूछा - क्या इस पोशाक में जाना उचित था, तो गाँधी ने मुस्कुरा कर जवाब दिया - 'सम्राट ने जितने कपड़े पहने थे वह हम दोनों के लिए काफी थे।' गाँधी ने वहाँ लंदन में, जहाँ उनके ठहरने का प्रबंध एक आलीशान होटल में किया गया था, उसे छोड़कर ईस्ट एंड की गंदी बस्तियों के एक छोटे-से कुटीर में रहना पसंद किया। वहाँ गाँधी ने जॉर्ज बनार्ड शॉ, चार्ली चैप्लिन, हैरोल्ड लॉस्की, मारिया मांटेसरी आदि से मुलाकात की, जिनका विवरण वहाँ के समाचार-पत्रों में प्रकाशित हुआ। वे लंकाशायर के उन मजदूरों से मिले जो भारत में उनके द्वारा चलाए जा रहे स्वदेशी आंदोलन के कारण बेरोजगार हो गए थे। इंग्लैंड की आम जनता लंदन की सड़कों से गुजरते हुए गाँधी को देखने के लिए अपने घरों से निकलकर उमड़ पड़ी थी। मानो वह बीसवीं शताब्दी के ईसामसीह का दर्शन कर रही हो। ऐसे ही होंगे ईसा - अर्द्धनग्न - प्रेम का संदेश जन-जन तक फैलाने वाले!

हिंसा और युद्ध से जर्जर मानवता को अहिंसा और प्रेम का पाठ पढ़ाने वाले गाँधी के व्यक्तित्व ने पूरे यूरोप की जनता में एक गहरी छाप छोड़ी थी।

उन्होंने एक रेडियो-वार्ता में कहा - 'सारी दुनिया का ध्यान भारत के स्वतंत्रता-संग्राम की ओर आकर्षित हुआ है, क्योंकि हमने स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए जो तरीके अपनाए हैं, वे अनोखे हैं। ...दुनिया खून बहाते-बहाते तंग आ चुकी है। दुनिया इससे बाहर निकलने का कोई रास्ता खोज रही है और मैं यह विश्वास प्रकट करके अपनी पीठ खुद ठोक रहा हूँ कि शायद लालायित दुनिया को मुक्ति का मार्ग दिखाने का श्रेय भारत की प्राचीन भूमि को ही प्राप्त होगा।'

जब चारों ओर हिंसा का वीभत्स खेल चल रहा था, गाँधी ने उसके बरक्स अहिंसा का सिद्धांत रखा था। उन्होंने सशस्त्र विद्रोह के बजाय नैतिक आंदोलन के सहारे, आतंकवादियों के बमों के धमाकों की जगह अवहेलनापूर्ण मौन के सहारे, बंदूकों की गोलियों की बौछार की जगह प्रार्थना के सहारे भारत में जन-साधारण को संगठित कर ब्रिटिश उपनिवेशवाद की जड़ें हिला दी थीं। उनके दुबले-पतले शरीर और आचरण की सहज प्रतिभा में एक संत, एक फ़क़ीर, एक महात्मा के लक्षण देख देश की करोड़ों जनता उनके साथ चल पड़ी थी। गाँधी ने आज के नेताओं की तरह उन्हें कोई लोभ, लालच न दिखाकर यह चेतावनी दी थी - 'जो लोग मेरे साथ आएँ वे खाली जमीन पर सोने के लिए, मोटा कपड़ा पहनने के लिए, भोर पहर बहुत जल्दी उठने के लिए, सीधा-सादा नीरस खाना खाकर पेट भरने और यहाँ तक कि अपना पाखाना स्वयं साफ करने के लिए तैयार रहें।'

उस अधनंगे फ़क़ीर ने जीवन की एक ऐसी शैली, एक ऐसी प्रणाली विकसित की थी, जो उसे बुद्ध और कबीर से मिली थी। बुद्ध भी इसी तरह लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व अपने राजसी वस्त्र उतार कर अधनंगे फ़क़ीर बने थे और लगातार घूमते रहे थे, जन-जन में समता, भाईचारा और अहिंसा की

ज्योति जगाई थी। गाँधी जाति-पाँति को तोड़ने वाले, वंचितों में मनुष्य होने का स्वाभिमान भरने वाले, हिंदू-मुस्लिम एकता की नींव रखने वाले, स्वदेशी का मंत्र फूंकने वाले, आधुनिक बुद्ध थे। वे ईसा की तरह साधारण लोगों में प्रेम और राग की ऐसी वाणी लेकर जाते थे कि लोगों को वे अपने आत्मीय या 'आत्मा के मित्र' की तरह लगते थे। वे कबीर की तरह रूढ़ियों को तोड़ने वाले और सभी मनुष्यों में एक ही ईश्वर बसता है, राम-रहीम एक है, हिंदू और मुसलमान एक जैसे ही मनुष्य हैं, ब्राह्मण और शूद्र में कोई अंतर नहीं है - का संदेश जन-जन तक फैलाते थे। वे कबीर की तरह ही प्रतिदिन चरखा चलाते थे और उसके सूत से जो आमदनी होती थी, उसी से अपनी आवश्यकता की पूर्ति करते थे।

गाँधी में संतों की वाणी का सार था। उनका मानना था कि आज़ादी मिलने के बाद सभी मंत्री साधारण कुटिया में निवास करें। वे वेतन नहीं लें। अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए वे स्वयं कुछ काम करें। भारत के लोगों की तभी वे निस्वार्थ भाव से सेवा कर सकते हैं। राजसी ठाट-बाट से, ऐश्वर्य से रहने वाला सत्ताधारी वर्ग गरीब किसानों के बारे में क्या सोच सकता है? १५ अगस्त, १९४७ई. को आज़ादी मिलने के बाद भी भारत के गवर्नर जनरल का पद सुशोभित करने के लिए नेहरू ने लुई माउंटबैटेन से आग्रह किया। किंतु गाँधी 'एक अछूत भंगी लड़की को, जिसका इरादा पक्का हो, जो भ्रष्टाचार से कोसो दूर हो और हीरे की तरह शुद्ध हो' - को इस पद पर आसीन करना चाहते थे। लेकिन जब माउंटबैटेन को गवर्नर जनरल बना दिया गया तो गाँधी ने उनसे अनुरोध किया कि वे लुटियंस के बनाए इस भव्य भवन (मौजूदा राष्ट्रपति भवन) को छोड़कर किसी साधारण घर में रहें, जहाँ नौकर-चाकर नहीं हो, लाव-लश्कर, सरकारी तामझाम न हो। गाँधी चाहते थे कि लुटियंस के बनाए इस महल को एक अस्पताल में परिवर्तित कर दिया जाए।

लेकिन गाँधी का यह सपना पूरा नहीं हुआ। आज़ादी के बाद सत्ताधारी वर्ग किस तरह सुख-ऐश्वर्य में लिप्त हुआ, वह निरंतर धनाढ्य होने की आकांक्षा में किस तरह भ्रष्टाचार के दलदल में धँसता गया, यह हमारे सामने प्रत्यक्ष है। सादगी, सच्चरित्रता, तप, त्याग, प्रेम, करुणा भारत के प्रभुवर्ग में सिरे से नदारत था। यही कारण है कि भारत का जो विकास होना चाहिए था, नहीं हुआ। आत्मनिर्भरता का जो पाठ गाँधी ने पढ़ाया था, वह विदेशी पूँजी के निरंतर आगमन से धूमिल हो गया। नव उपनिवेशवाद ने भारत को चूसना जारी रखा। भारत में जाति-प्रथा तो समाप्त नहीं हुई, अपितु हर जाति के मज़बूत संगठन उभरे और हर जाति के अपने नेता। काँग्रेस ने एक परिवार की पार्टी बनकर देश को पतनशीलता के दलदल में फँसा दिया। आज़ादी के बाद काँग्रेस को सत्ता का व्यामोह त्यागकर एक जनसेवी संस्था के रूप में काम करना चाहिए, ऐसा उस अधनंगे फ़कीर का मानना था, किंतु काँग्रेस सिर्फ सत्ता के खेल में फँसी रह गई और गाँधी के सपनों का भारत चूर-चूर हो गया।

उस अधनंगे फ़कीर ने लगातार सक्रिय और गतिशील जीवन जिया था। वह टैगोर के 'एकला चलो रे' गीत को बराबर गुनगुनाते थे। यह उनमें एक उत्साह जगाए रहती थी। चलते रहो और निरंतर कर्मशील रहो - गाँधी ने इसे जीवनभर निभाया।

गाँधी कायरता और निकम्मेपन के विरोधी थे। उनका जीवन स्वयं में एक आंदोलन था। उन्होंने कोई अपराध नहीं किया था, हिंसा नहीं की थी, किंतु उन्हें इतनी बार जेल-यात्रा करनी पड़ी थी, कि उसका भी एक विश्व-कीर्तिमान है। उन्होंने कुल २,३३८ दिन जेल में बिताए थे। २४९ दिन दक्षिण अफ्रीका के जेलों में और २०८९ दिन भारत के जेलों में। उनका मस्तक भय से रहित था और चित्त में स्वाधीनता का भाव भरा था। वे सिर झुकाकर चलने वाले व्यक्ति नहीं थे। कायरता तो उनमें थी ही नहीं। जीवन भर सत्य का प्रयोग करने वाले गाँधी को 'महात्मा' के रूप में जन-जन ने इसीलिए स्वीकार

किया था। गाँधी ने स्वतंत्र भारत के लिए जो इच्छा व्यक्त की थी, वह पूरी तो नहीं हुई, इसकी उम्मीद भी नहीं है किंतु उनकी यह अमरवाणी सदैव गुंजायमान होती रहेगी - 'मैं भारत को स्वतंत्र और शक्तिशाली देखना चाहता हूँ ताकि वह सारी दुनिया की भलाई के लिए शुद्ध मन से और अपनी इच्छा से त्याग कर सके। जब व्यक्ति का मन शुद्ध होगा तो वह परिवार के लिए त्याग करेगा, परिवार गाँव के लिए, गाँव जिले के लिए, जिला प्रांत के लिए, प्रांत राष्ट्र के लिए और राष्ट्र सबके लिए। मैं खुदाई राज चाहता हूँ, इस धरती पर ईश्वर का राज।'

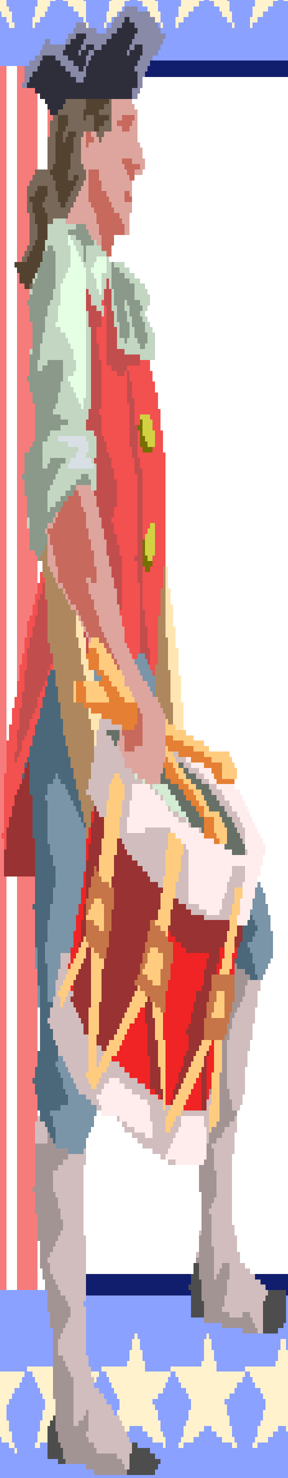

सपने

विजय कुमार

सपने टूटते हैं
बिखरते हैं
चूर चूर होते हैं
और मैं उन्हें सँभालता हूँ दिल के टुकड़ो की तरह
उठाकर रखता हूँ जैसे कोई टूटा हुआ खिलौना हो
सहेजता हूँ जैसे काँच की कोई मूरत टूटी हो .
और फिर शुरू होती है,
एक अंतहीन यात्रा बाहर से भीतर की ओर
खुद को सँभालने की यात्रा,
स्वंय को ख़त्म होने से रोकने की यात्रा
और शुरू होता है एक युद्ध
ज़िन्दगी से
भाग्य से
और स्वंय से ही
जिसमें जीत तो निश्चित होती है
बस
उसे पाना होता है
ताकि
मैं जी सकूँ
ताकि
मैं पा सकूँ
ताकि
मैं कह सकूँ
हाँ!
विजय तो मेरी ही हुई है.

सड़क

डॉ. रामदरश मिश्र

भर्र-भर्र करती हुई एक जीप दुकान के सामने रुकी।

'ओ चायवाले, चार कप चाय बनाना,' - कह कर एक आदमी तीन आदमियों के साथ दुकान के आगे पड़ी खाट पर बैठ गया और वे आपस में बनती हुई इस सड़क के बारे में बातचीत करने लगे।

चायवाले ने कोयले के चूल्हे पर खौलते पानी को पतीली में डाल कर अंदाज से उसमें चाय, चीनी और दूध मिला दिया और काँपते हाथों से आँखें नीची किए चार कप चाय तिपाई पर रख आया।

'अरे हो हो, क्या वाहियात चाय बनाई है इस बुड्ढे ने,' कह कर उस आदमी ने झटके से प्याला सहित चाय नीचे लुढ़का दी। शेष तीनों आदमियों ने उसकी हाँ में हाँ मिलाई, लेकिन चाय सुड़कते रहे।

अब जा कर चायवाले ने आँख उठाई और क्रोध से बड़बड़ाते उस आदमी ने भी चायवाले को देखा और आश्चर्य से बोल उठा -

'अरे, आप मास्टर साहब।'

और मास्टर चंद्रभान पांडे ने देखा कि वह आदमी और कोई नहीं, उसके इलाके के एमएलए जंगबहादुर यादव हैं। उनकी आँखें शर्म से झुक गईं और झुकी हुई आँखें पोर-पोर फटी हुई खादी की धोती के बड़े-बड़े सुराखों में उलझ गईं।

यादव जी ने एक ठहाका लगाया - 'अच्छा मास्टर जी, आपने अब यह धंधा भी शुरू कर दिया। ठीक है आदमी को कुछ-न-कुछ करते रहना चाहिए। पैसा बड़ी चीज है। मेरे लायक कोई सेवा हो तो कहिएगा, मास्टर जी।' फिर एक ठहाका लगाया और साथ के लोगों ने भी ठहाके का अनुसरण किया। एक ने खुशामद के तौर पर कहा, 'अरे यादव जी, आपकी बदौलत जब इस इलाके में सड़क आ रही है, तो न जाने कितने लोगों का पेट पलेगा।'

यादव जी ने पाँच रुपए का एक नोट निकाला और मास्टर साहब की ओर बढ़ा दिया।

'मेरे पास खुले रुपए और पैसे नहीं हैं।' मास्टर जी ने कहा।

'अरे तो रखिए न, कौन आपसे पैसे वापस माँग रहा है?'

'नहीं, मैं आपसे वैसे भी पैसे लेने का अधिकारी नहीं हूँ। आपने तो चाय पी ही नहीं।'

'अरे तो चाय के पैसे कौन दे रहा है गुरूजी। इसे गुरु दक्षिणा समझ लीजिए। रख लीजिए, काम आएगा।'

पांडे जी तिलमिला गए। हाथ में पाँच रुपए का नोट पकड़े मर्माहत से रह गए। उनके मन में क्रोध का एक बवंडर उठा। आँखों में हिकारत भर वे यादव जी की ओर बढ़े और पाँच का नोट उनकी ओर फेंक कर चिल्लाए - 'यादव जी, ये अपने रुपए लेते जाइए, मैं भीख नहीं माँगता।'

लेकिन यादव जी जीप में बैठ चुके थे। मुस्करा कर पांडे जी और उनके द्वारा फेंके गए रुपए को देखा। जीप भर्र-भर्र करके स्टार्ट हुई और उसकी धूल भरी हवा में नाचता हुआ नोट थोड़ी दूर जा गिरा।

कुछ देर तक नोट धूल-भरी हवा में छटपटाता रहा और फिर शांत हो गया। पांडे जी उसे देखते रहे, फिर धीरे-धीरे आगे बढ़े और धूल झाड़ कर नोट उठा लिया। आखिर किया क्या जाए।

गोरे बदन, चौड़े माथे, श्वेत केशवाले पांडे जी खादी की एक जीण-शीर्ण धोती पहने और उसी का आधा भाग नंगे शरीर पर डाले हुए अपनी झोंपड़ी के आगे पड़ी बेंच पर बैठे-बैठे उदास हो चले थे। उनके चंदन चर्चित ललाट की सिकुड़न भरी रेखाओं में यादव जी की जीप से उड़ी हुई धूप समा गई थी। सोच रहे थे -

यादव उसे अपमानित कर गया। वह पहले ही कहता रहा कि यह काम उससे नहीं होगा। वह ब्राह्मण, पुराना कांग्रेसी, स्कूल का शिक्षक। क्या बुढ़ौती में छोटी जातियों के लोगों की तरह चाय-पकौड़ी और सुरती बेचना ही उसकी तकदीर में रह गया था। उसने कितना मना किया लेकिन अपनी संतान के आगे किसका वश चलता है। रमेश जिद कर बैठा और कुछ लोगों ने उसकी हाँ-में-हाँ मिला दी।

'पर्र...' पांडे जी उदास हो आए। हाथ लगा कर देखा खादी की धोती चूतड़ पर फिर फट गई थी। धोती क्या है। जैसे चीथड़ों का जोड़। खादी उसे बेपर्द करके छोड़ेगी। अब वह क्या करे? इसी धोती को वह इधर से उधर और उधर से इधर करके पहनता रहता है। सभी जगह से तो यह फट चुकी है। अब इधर से उधर करने की भी तो जगह नहीं बची। रमेश कहता है - 'छोड़िए, खादी-वादी पिताजी। मिल की धोती मजबूत और सस्ती होती है। वह इस तरह जगह-बेजगह धोखा नहीं देती।'

वह कब से सुन रहा है रमेश की बात को और सोचता है, ठीक ही तो कहता है रमेश। लेकिन अब क्या बदलना? अब तो जिंदगी बीत चली, इस बुढ़ौती में क्या नियम भंग करना? ...लेकिन वह कहाँ से खरीदे खादी की धोती। एक मोटी धोती भी तेरह-चौदह रुपए से कम में नहीं आती, फिर उसके साथ कुरता-टोपी, चादर-तौलिया सभी तो लगे हुए हैं। इतने में तो मिल के मोटे कपड़ों के कई कई सेट आ जाएँगे और चलेंगे भी ज्यादा। ...फिर भी जी नहीं मानता। जब जीना ही कितने दिन है। ...लेकिन जी के मानने न मानने का ही सवाल तो नहीं है। उसे स्कूल से रिटायर हुए पाँच वर्ष हो गए, खेत के नाम पर तीन बीघे खेत - वो भी बाढ़ग्रस्त कछार के खेत। छह-सात आदमियों का गुजर- बसर कैसे होगा। महेश तो पढ़-लिख कर परिवार सहित बाहर चला गया नौकरी करने। उसका अपना ही गुजर-बसर मुश्किल से होता है। छोटा लड़का रमेश बहुत ढकेलने पर भी आठवीं पार नहीं कर सका। लिपट गया खेती-बारी में। उसके तीन बच्चे हैं, दोनों जून भरपेट खाना तो मिलता नहीं, ये खादी के कपड़े कहाँ से आएँ?

दुकान के सामने की सड़क से लोग आ जा रहे थे। पांडे जी ने झोंपड़ी के पीछे जा कर धोती इधर उधर करने की बहुत कोशिश की लेकिन अब उन्हें कोई गुंजाइश नहीं दीखी। उसे क्रोध हो आया कि इस ससुरी धोती को फाड़-फूड़ कर फेंक दे और नंगा हो जाए। ...अरे नंगा तो हो ही गया है। चाय की दुकान खोल कर नंगा हुआ है? हर परिचित आदमी एक व्यंग्यमयी दृष्टि से उसे देखता है और अजब-अजब सवाल करता है और तिस पर यह यादव का बच्चा उसे इतना अपमानित कर गया। उसे इतना क्रोध आया कि इस यादव के बच्चे को फिर एक बार बेंच पर खड़ा करके उसके चूतड़ पर बेंत लगाए, लेकिन अब तो वह एमएलए हो गया है, छात्र नहीं रहा। वह अपना क्रोध अपने भीतर ही दबाए सुलगने लगा। लेकिन उसे एक बात से बड़ी राहत मिली कि उसने इस एमएलए के बच्चे को स्कूल में कई बार बेंच पर खड़ा कर बेंत से पीटा है। अब भी उसके चूतड़ पर बेंत के निशान होंगे। धीरे-धीरे स्कूल के दिन उसके सामने सरक आए। तब कौन जानता था कि यह जंगली आगे चल कर जंगबहादुर यादव,

एमएलए बन जाएगा। क्लास में सबसे बोदा लड़का यही था। इसे हर रोज मार पिटती थी। कई बार तो इसने लड़कों के चाकू, दावात, पेंसिलें चुरा ली थीं और उसने इसे बेंच पर खड़ा करके बहुत पीटा था। एक बार तो इसने गांधी जी की तसवीर दूसरे लड़के की किताब से फाड़ ली थी और उस पर पेशाब कर दिया था। फिर तो उसने इसे स्कूल से ही निकाल दिया था। बाद में लोगों के कहने-सुनने पर वापस ले लिया था... अब वह बड़ा नेता बन गया है। पता नहीं, इस देश में कैसे इतने बड़े-बड़े चमत्कार हो जाते हैं। ...उसे लगता है कि लोग कहाँ से कहाँ पहुँच गए और वह खादी की फटी धोती पकड़े हुए बैठा है।

शाम को रमेश आया और दोनों आदमी दुकान उठा कर घर ले गए।

'मुझसे यह नहीं होगा, रमेश।' पांडे जी थके-थके से बोले।

'क्यों पिताजी?'

'लोग मुझे बहुत छोटी नजर से देख रहे थे आज। मैं लोगों की निगाह नहीं झेल पा रहा था।'

'हाँ पिताजी, भूख से भारी लोगों की निगाहें ही होती हैं न। तो ठीक है, हम लोगों की निगाहें क्यों झेलें, भूख ही झेलें।'

बीच में एक चुप्पी पसर गई।

'बैठने को तो मैं बैठता, देखता - कौन साला मेरा अपमान करता है, लेकिन फिर खेती-बारी चौपट हो जाएगी।'

पांडे जी कुछ नहीं बोले।

'कुछ मिला, बाबू जी?'

'हाँ, दो रुपए कमाई के और पाँच रुपए गुरु-दक्षिणा के।'

'गुरु-दक्षिणा कैसी?'

पांडे जी ने यादव की कहानी सुना दी।

'अरे तो इसमें इतना आहत होने की कौन-सी बात है, बाबू जी। सौ हम लोगों से खाता है, पाँच दे ही गया तो क्या हो गया?'

पांडे जी ने रमेश को मार खाई हुई दृष्टि से देखा। रमेश हँस रहा था।

रात को पांडे जी लेटे तो बड़ी बेचैनी अनुभव कर रहे थे। वे अपने से ही पूछ रहे थे - क्यों भाई आदर्शवादी कांग्रेसी, तपे हुए शिक्षक, नशाखोरी के दुश्मन। तुम्हारी यही परिणति होनी थी। जिन्हें तुमने जीवन-भर ज्ञान पिलाया, क्या उन्हें अब चाय-पकौड़ी खिलाओ-पिलाओगे? जिनके सामने नशे के विरुद्ध बोलते रहे, उन्हीं के लिए सुरती तौलोगे? नहीं-नहीं, यह नहीं होगा।

वह कब से सोच रहा था कि काश, इस पिछड़े हुए कछार में एक सड़क आती। लेकिन सारी-की-सारी सरकारें तो सोई हुई हैं इस कछार की ओर से आँख फेर कर। सड़कें तो दुनिया में कितनी हैं लेकिन अपने जवार में सड़क आने का और उस पर यात्रा करने का सुख कुछ और ही होगा। कितना प्यारा होगा नदियों-नालों, खंदकों-खाइयों के ऊपर से भागती सड़क का यात्री होने का। कितनी सुविधाएँ बढ़ जाएँगी। लेकिन तब उसने कहाँ सोचा था कि सड़क के आने का कोई और मतलब भी हो सकता है।

और जब कच्ची सड़क पक्की सड़क बनने लगी तो रमेश ने कहा, 'बाबू जी, कच्ची सड़क पक्की सड़क बन रही है - यह बहुत अच्छा हुआ। अपना एक खेत सड़क के किनारे ही है और उसी के पास बस

अड्डा भी बननेवाला है। हम क्यों न वहाँ कोई दुकान खोल दें? शुरू में चाय की दुकान खोली जाए और कुछ सुरती की गाँठें वहाँ रख दी जाएँ। रास्ता तो चालू है ही, अब सड़क बन रही है, वह और चालू हो जाएगी और बहुत से मजदूर काम पर लगेंगे।'

'अच्छा, देखा जाएगा।' टालने की गरज से पांडे जी ने कहा।

'देखा नहीं जाएगा, अभी शायद किसी के दिमाग में यह चीज आई नहीं है, बाद में तो सभी भरभरा कर दुकानें खोल देंगे। हमें सबसे पहले अपनी दुकान जमा लेनी चाहिए।'

एक चुप्पी छाई रही।

'इस बुढ़ौती में आपको खेती-बारी के काम करने पड़ते हैं, इससे अच्छा होगा कि आप दुकान पर बैठें। आराम से आपके दिन भी कट जाएँगे और चार पैसे की आमदनी भी हो जाएगी।'

'क्या कहते हो - अब मैं दुकानदारी करूँगा?' वह तैश में उठा था तो उसकी धोती फट गई थी।

और जब रोज-रोज रमेश के विचार उसके दिमाग से टकराने लगे तो एक दिन दुखी मन से स्वीकृति दे दी। बनती हुई सड़क के पासवाले खेत में एक झोंपड़ी पड़ गई, कुछ सुरती के पत्ते तथा चाय के सामान रख दिए गए। वह आज पहली बार दुकान पर बैठा था।

लेकिन नहीं, वह कल दुकान पर नहीं जाएगा। उसका रोम-रोम परिताप से सुलग रहा है, गरीब हुआ तो क्या - इस बुढ़ौती में अपनी आबरू बेचेगा। करवट ली तो धोती फिर पर्र से बोल गई। अब नंगा हो कर घर तो रह सकता है लेकिन क्या दुकान पर भी जाएगा इसी रूप में?

सुबह हुई तो रमेश दुकान का सामान लिए हाजिर हो गया। पांडे जी अधनंगे लेटे रहे।

'बाबू जी, दुकान नहीं जाइएगा?'

पांडे जी की इच्छा तो हुई कि कह दें - नहीं जाऊँगा। लेकिन कह नहीं सके। दर्द-भरी आवाज में बोले, 'नंगा ही जाऊँ क्या?'

सामान नीचे रखते हुए रमेश भारी मन से बोला, 'अब क्या कहा जाए। कुछ रुपए इकट्ठे हो जाएँ तो आपके लिए खादी की एक धोती ला दूँ। खादी भी कितनी महँगी हो गई।'

पांडे जी ने देखा कि रमेश के बच्चे फटे-पुराने नेकर पहने उसके सामने से स्कूल चले गए। उन्हें एक चोट-सी लगी - क्या वह इतनी महँगी खादी की धोती पहन कर बच्चों को नंगा रखेगा? आज तक तो उसने यही किया। उसे क्यों नहीं मालूम हुआ कि खादी-खादी में भेद होता है। एक खादी उसकी है, एक यादव जी की। यादव ही खादी पहनने का हकदार है क्योंकि उसके शरीर पर खादी का विकास हुआ है और वह? वह नहीं, उसके शरीर पर तो खादी फटती ही चली गई है।

रमेश सामान लिए अंदर जा रहा था कि पांडे जी ने पुकारा

'रमेश!'

'हाँ, बाबू जी।'

'तुम्हारे पास एक के अलावा कोई साबुत धोती है?'

'हाँ, है बाबू जी।'

'लाना तो बेटे।'

रमेश ने व्यथा, आश्चर्य और प्रसन्नतामिश्रित आँखों से पिता को देखा। पिता ने दूसरी ओर मुँह फेर लिया था।

और कुछ देर बाद पांडे जी रमेश की धोती पहन कर रमेश के पीछे-पीछे दुकान की ओर चले जा रहे थे।

सड़क दुर्घटना

हरि मंगल 'सलिल'

रोता हूँ हरदम मैं अपनी, आँखों को नम करके।
साथी जो चला गया, वो अब आएगा कैसे ॥
सरकारें न नियम बनाये, मस्त है वो न उनको गम।
पर तुम तो ये भी सोचो, कब तक यूँ मरेगें हम ॥
इतनी भी क्या जल्दी है, जो इतना तेज चलाते तुम।
सारा समय सड़क पर ही, आकर अब बचाते तुम ॥
इतना तेज चला करके, क्या भला कर लेगें हम।
या तो मारेगें लोगो को, या तो खुद मर लेगें हम ॥
हम तो हैं इन्सान भला, फिर क्यों इन्सान को मारेगें।
जियो और जीने दो, सबको ये सिद्धांत उचारेगें ॥
धीरे चलने में न डर है, तेज चलाने में न निडर।
निडर वही है जो न डर दे, जो डर दे वो नहीं निडर ॥
अगर निडर तुम बनते हो, तो चलो अभी सीमा पर चलें।
आतंकवादियों को मारें, भारत माँ को आबाद करे ॥
सेना तो मजबूर बहुत है, वो शासन की अर्जी पर।
पर तुम तो खुद के मालिक हो, अपनी-अपनी मर्जी पर ॥
काश जो तुमने ये सन्देश, पहले ही दिया होता।
तो शायद मेरा वो भाई, दुनिया में जिन्दा होता ॥
मैं उनको इस दुनिया में, वापस तो नहीं ला सकता हूँ।
पर उनकी इस पीड़ा को मैं, जीवन भर गा सकता हूँ ॥

शिक्षा को नवोन्मेषी बनाने की चुनौती

प्रो. गिरीश्वर मिश्र

कुलपति : महात्मा गाँधी अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय

आधुनिक भारत में विश्वविद्यालय स्तर पर शिक्षा का आरंभ हुए एक शताब्दी से अधिक का समय बीत चुका है. स्वतंत्रता मिलने के बाद इसे प्रोत्साहन मिला और धीरे-धीरे सरकार द्वारा विश्वविद्यालय, कॉलेज और विभिन्न प्रकार के 'प्रोफेशनल' शिक्षा देने वाले तकनीकी, मेडिकल और प्रबंधन के संस्थान खुलते चले गए. शुरू में ब्रिटेन और बाद में अमेरिका से उधार लिए गए एक बंधे-बधाए सांचे में शिक्षा का विस्तार होता गया. उधारी के इस ज्ञान के पैकेज में विषयवस्तु, विचार और अध्ययन विधि सब कुछ शामिल था. हमने औपनिवेशिक मानसिकता के चलते सामाजिक विज्ञानों में भी यूरो-अमेरिकी ज्ञान को सार्वभौमिक और निरपेक्ष मान लिया और उसे ही अंतिम सत्य मानने की प्रवृत्ति पाल ली.

एक तरह से उस आयातित पश्चिमी ज्ञान और सिद्धांत को भारत में जांचना ही शोध का काम बन गया. नतीजतन ज्ञान के नवोन्मेष की संभावना जाती रही और हम केवल अनुकरण के काम में लगे रहे. देशज ज्ञान की ओर हमने नजर ही नहीं डाली और तिरस्कार करते हुए उसके साथ कोई सार्थक रिश्ता नहीं जोड़ सके. ज्ञान के क्षेत्र में हम परनिर्भर होते चले गए और सृजन के बदले उपलब्ध ज्ञान को दोहराना ही हमारा शोध-लक्ष्य बनता गया। फलतः शोध प्रकाशन की मात्रा और गुणवत्ता की दृष्टि से भारत पिछड़ता चला गया.

प्रायः उच्च शिक्षा सार्वजनिक उपक्रम रही है और उच्च शिक्षा में सरकारी निवेश की भारी कमी रही है, जिसके चलते अधिकांश विश्वविद्यालय और महाविद्यालय अध्यापकों की कमी, पुस्तकालयों की दुरावस्था और आवश्यक उपकरण आदि की दृष्टि से वंचित और उपेक्षित बने रहे हैं. राज्य का मसला होने के कारण उच्च शिक्षा की रीति-नीति के लिए राज्य स्वतंत्र हैं और अध्यापकों की सेवा की शर्तें और विधान एक राज्य से दूसरे में अलग हैं। उदाहरण के लिए, अध्यापक किस आयु में, कब सेवानिवृत्त होते हैं, यह राज्य विशेष पर निर्भर करता है. आज अधिकांश विश्वविद्यालय बढ़ती छात्र संख्या के साथ घटती अध्यापक संख्या से जूझ रहे हैं. प्रवेश देना और परीक्षा कराना ही उनका मुख्य कार्य हो गया है. इसके साथ ही अक्सर राजनीतिक हस्तक्षेप से विश्वविद्यालय का शैक्षिक जीवन त्रस्त रहता है. ऐसे माहौल में अध्ययन-अध्यापन की श्रेष्ठता की संभावना सीमित हो जाती है. पिछले कुछ वर्षों से इस स्थिति में कुछ बदलाव निजी संस्थानों के कारण आया है. ज्यादातर ये व्यापार के तर्ज पर अमीर घरानों द्वारा आसानी से आर्थिक लाभ कमाने के लिए चलाए जा रहे हैं. इस परिदृश्य में शिक्षा के प्रचार-प्रसार में उनकी गुणवत्ता और उपयोगिता को सुरक्षित रखना कठिन हो रहा है.

आज देश की जनसंख्या में दर्ज हो रही युवावर्ग की बढ़ती संख्या भी शिक्षा-व्यवस्था पर भारी दबाव बना रही है. यह युवा वर्ग भिन्न–भिन्न सांस्कृतिक और भौगोलिक क्षेत्रों से आता है, जिनकी जरूरतें भी अलग-अलग होती हैं. पर उन्हें देने के लिए हमारे पास पाठ्यक्रमों में कोई विविधता नहीं है. हुनर या कुशलता को लेकर उच्च शिक्षा के केंद्र विशेष उत्साहित नहीं रहे हैं और आज भी व्यावसायिक पाठ्यक्रमों को हेय दृष्टि से देखा जाता है और उस धारा से आगे आने वाले छात्रों के सामने बहुत कम

विकल्प होते हैं. इसी समस्या का एक पहलू शिक्षा का माध्यम है. जहाँ अंग्रेजी माध्यम को अक्सर मानक और प्रामाणिक माना जाता है, वहीं हिंदी समेत अन्य गैर-अंग्रेजी भारतीय भाषाओं को विचलन माना जाता है.

उच्च शिक्षा में सुधार के लिए बने आयोगों और समितियों द्वारा समय-समय पर संस्तुतियां की गईं और उनमें बहुत कुछ उपयोगी भी है. पर हमारी वरीयता सूची में शिक्षा बहुत नीचे रही है और हम अभी तक उन संस्तुतियों पर समग्रता में विचार न कर सके. तात्कालिक जरूरतों के मुताबिक जरूर कुछ करते चले गए. इस तरह के बेतरतीब हस्तक्षेपों के चलते एक ओर बेरोजगार शिक्षितों की बड़ी संख्या पैदा हो रही है, दूसरी ओर अनेक पदों के लिए योग्य व्यक्तियों की कमी भी बनी हुई है. आज ऐसे बहुतेरे लोग मिल जाएंगे, जो डिग्री होने के बावजूद अपेक्षित योग्यता और कौशल न रखने के कारण नौकरी पाने में विफल रहते हैं.

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में शिक्षा, नौकरी, ज्ञान और कौशल के आपसी संबंधों पर गौर करें, तो लगता है कि शिक्षा के प्रति हमारी कामचलाऊ नीति पर गंभीर विचार बेहद जरूरी हो गया है और उसमें बदलाव लाना अनिवार्य है. भूमंडलीकरण के समय में एक ओर शिक्षा का नया उभरता वैश्विक परिवेश है, तो दूसरी ओर देश के सांस्कृतिक स्वभाव और उसकी जरूरतों की अपनी मांगें हैं. उच्च शिक्षा की खाई को पाटने के लिए हमें नए ढंग से देखना चाहिए. सूचना और संचार की बदलती तकनीकी से भी इसे जोड़कर देखना जरूरी हो गया है. इसकी सहायता से शिक्षा का लाभ सही, प्रभावी ढंग से व्यापक क्षेत्र में पहुंचाने में सुविधा होगी.

आज की सबसे बड़ी चुनौती है कि हम शिक्षा को किस तरह सृजनधर्मी बनाएं, क्योंकि शिक्षा ज्ञान का केवल पुनरुत्पादन ही नहीं है. उसमें जिज्ञासा, प्रश्नाकुलता, कल्पना और मौलिक चिंतन की संभावना होनी चाहिए. इस दृष्टि से चिंतन की भाषा का विशेष महत्व है. अंग्रेजी को हमने चिंतन की भाषा बना रखा है. हिंदी और अन्य भाषाएं शिक्षा का माध्यम बन रही हैं, पर अंग्रेजी का वर्चस्व कायम है। चूंकि भाषा केवल अभिव्यक्ति का साधन ही नहीं, बल्कि यथार्थ को सोचने, समझने और रचने का अवसर भी देती है, इसलिए भाषायी दुर्बलता कल्पनाशक्ति को भी बाधित करती है. वास्तविक अर्थों में शिक्षा व्यक्ति के लिए जीवन पर्यंत चलने वाला संस्कार है, जिसमें मन और शरीर, दोनों का परिष्कार होता रहता है. व्यक्तित्व के निर्माण और परिवेश के प्रति दायित्व के साथ जीने में समर्थ बनाने वाली शिक्षा ही मौजूदा विसंगतियों और जड़ता से मुक्ति दिला सकेगी.

शिक्षा के प्रति हमारी कामचलाऊ नीति में बदलाव लाना अनिवार्य है. भूमंडलीकरण के समय एक ओर शिक्षा का नया उभरता वैश्विक परिवेश है, दूसरी ओर देश के सांस्कृतिक स्वभाव और उसकी जरूरतों की अपनी माँगें.

झलक

सिन्धी कहानी - मूल : मोहन कल्पना
अनुवाद : देवी नागरानी

सर्दियों की सर्द रात थी। हम शिव के मंदिर के पास पीपल के पेड़ के नीचे बैठे थे। हम दोनों में से किसी ने भी कुछ बात नहीं की। हवा पीपल के पत्तों को छू रही थी। पीपल चाँदनी को चूम रहा था और मैं सिंधू की ओर देख रहा था जिसमें सितारों की रोशनी भरी हुई थी।

अचानक दोनों उठकर खड़े हो गए। ठंडी ने अपना असर दिखाना शुरू किया था।

उसने मेरे क़रीब आकर कोट की जेब में हाथ डाला। हाथ आर-पार निकल आया। जेब फटा हुआ था। सिंधू को पता न था कि वह कोट मेरा नहीं बल्कि मेरे दादा का था, जिसने मेरे पिता को दिया था और उसी रात यह मुझे मिला।

'ये क्या ?'

'जैसी मेरी ज़िन्दगी।'

'क्या बोल रहे हो ?'

'मध्यम श्रेणी का आदमी हूँ न।'

उसने अपना चेहरा मेरे सीने में छुपा लिया। आहिस्ता से कहा - 'फिर तुम नौकरी क्यों नहीं ढूँढ़ते ?'

'नौकरी के लिये मारा-मारा भटकता तो हूँ।'

'कहते हैं, अगर आदमी चाहे तो ज़मीन से सोना भी निकाल सकता है।'

'उसके लिये तो औज़ार की ज़रूरत होती है। सिंधू, बिना औज़ार के ज़मीन से सोना तो क्या, एक पत्थर तक नहीं निकाला जा सकता।'

'तब क्या होगा ?' उसने मेरे मुँह की ओर देखते हुए कहा।

'यह तो नहीं जानता सिंधू, तुम छोड़कर नहीं जाओगी इस बात की तसल्ली है। लेकिन तुम कैसी हो, कभी भी कुछ नहीं मांगा है। शायद मैं ऐसा हूँ, जो तुम्हें कुछ दे नहीं पाया हूँ। अच्छा ये तो बताओ, तुम्हें क्या बंगले में रहने और कार में घूमने का शौक नहीं?'

'तुमने मुझे क्या समझा है ?' उसने दूर हटते हुए कहा।

'समझा नहीं है, समझना चाहता हूँ।'

'क्या समझना चाहते हो, यही कि मैं कितना कर सकती हूँ ?

'तुम मुझे ग़लत समझ रही हो।'

'ग़लत मैं समझ रही हूँ या तुम ?'

'जो बात फ़ितरती है, उसके बारे में सोचना चाहिये, क्या तुम ऊँचे स्तर की ज़िन्दगी के ख़िलाफ़ हो।'

'हमेशा सादा रहना चाहिये और ऊँचा सोचना चाहिये।'

'नहीं' मैंने कहा - 'हमेशा ऊँचा रहना और गहरा चिंतन करना चाहिये।'

'अच्छा, सुनाओ मेरे लिये क्या लाओगे ? तुमसे कहा था, मुझे नौकरी है, मुझसे लिया करो। तुमने इन्कार कर दिया। घर से कुछ नहीं लेते, कैसे गुज़ारा कर लेते हो ? आज के नौजवान को चाहिये खेल, अख़बार और सिगरेट, लेकिन तुम ? अच्छा बताओ क्या लाओगे ?'

मैं पहले सोचने लगा कि क्या लाऊँ ? और फिर सोचने लगा पुस्तकें लाऊँ, लेकिन दोनों सवालों का जवाब पा न सका। वह होठों में एक गीत गुनगुनाने लगी।

मैंने सोचा कि उसके लिये एक फूल लाऊँगा, बाग़ में से तोड़ आऊँगा, लेकिन उसका मूल्य ? ओह ! वह हंसकर कहेगी - 'बस !' या शायद रो पड़े, उसे मेरी मजबूरी का अहसास होगा। नहीं, नहीं, उसे न हँसने दूँगा और न रोने। उधार लेकर सौग़ात दूँ, यह भी मेरी फ़ितरत नहीं। सब क़िताब भी बेच चुका हूँ। मेरे पास अपनी पेन भी नहीं है, कुछ भी नहीं है।

मेरी आँखों में हलकी जलन हुई, सोचा - पीपल के पेड़ से एक पत्ता तोड़कर, उसपर रखकर उसे अपने दो आँसू दे दूँ !

'चुप हो गए ?'

'सोच रहा हूँ।'

'ऊँचा या गहरा ?' वह हँसी

'दोनों !' अब मैं भी हँस पड़ा।

'क्या आसमान से चाँद उतार कर लाओगे ?'

'धरती भी चाँद है, अगर कोई चाँद से जाकर देखे।'

'तब तारे उतार लाओगे ?'

'उनकी रौशनी पहले से ही तुम्हारी आँखों में है'

'तो फिर क्या ले आओगे ?'

'पान लेकर आऊँ ?'

'पान।' वह ज़ोर से ठहाका मारकर हँसी।

'पान का ज़िक्र वेदों में भी है, उपनिषद्, पुराणों, रामायण, महाभारत और भागवत् में भी है।'

'और गीता में ?'

'गीता महाभारत का एक हिस्सा है और महाभारत में पान का ज़िक्र है।'

'शास्त्रों के अनुसार पान कौन खाता है, औरत या मर्द ?'

'शास्त्रों में सिर्फ़ पान की महिमा दर्ज है, खाते सिर्फ़ देवता है, जिसका ज़िक्र सभी हिंदुस्तानी महाकाव्यों में है।'

'तुमने क्या इतना पढ़ा है ?'

'मुझे ये सब एक पान वाले ने बताया था।'

वह हँसने लगी - 'अच्छा ले आना।'

xxxx

मैं पांच पैसे पाने की फ़िक्र में था कि छोटी बहन की आवाज़ सुनी। वह भाभी से कह रही थी कि 'चाय पत्ती न होने के कारण आज चाय नहीं बन पाएगी।'

भाभी ने कहा - 'तो फिर राजू को दस पैसे दो ताकि वह होटल से ले आए। हमने चाय न पी तो कोई बड़ी बात नहीं, पर अगर चन्दर न पियेगा तो उसे सर में दर्द हो जाएगा।'

शाम को अगर कभी ऐसा होता कि चाय नहीं बन पाती थी तो ऐसा ही होता था अगर मैं घर में हुआ करता।

राजू दस पैसे लेकर चाय लाने चला तो मैंने उसे आवाज़ दी। उसने नज़दीक आते ही कहा - 'भाई, मुझे चाय पिलाओगे ना ?' मैं जैसे पथरा गया। मैंने उससे कहना चाहा था कि 'पाँच पैसे मुझे दे दो तो मैं चाय ख़ुद ही पीकर आता हूँ।' कहा -

'पाँच पैसे तुम लो और पाँच मुझे दे दो।'

'और चाय ?'

'नहीं चाहिये।'

'भाभी मारेगी तो ?'

'तो मैं बैठा हूँ न !'

रात को पान वाले की दुकान पर आ बैठा, सोचा कि एक ठंडा कपोरी पान लूँगा, जिसमें चूने के सिवा और सब मसाले होंगे। कहूँगा कि पान में केसर, गुलकंद, इलाची और ठंडक ज़रूर डाल दे।

अभी जेब में हाथ डाला ही था कि उस हाथ को एक बच्चे ने आकर थामा। उसके हाथ में एक डिब्बा था। कहने लगा - 'साईं भीख नहीं माँगता, बिस्कुट बेचता हूँ, एक आने के न लो, पाँच पैसे के ले लो। ज़रूर लो, मेहरबानी करके लो।'

मैंने हाथ छुड़ाकर कहा - 'इसके लिये तुम इतना ज़ोर क्यों दे रहे हो ?'

'इसके लिए मैं सभी को ज़ोर भरता हूँ !'

'क्यों ?'

'लोग बिस्कुट नहीं लेंगे तो बापू मार देंगे, अम्मा मारेगी। मैं रोज़ दो रुपये के बिस्कुट बेचता हूँ, सच साईं, घर में फ़कत मैं ही कमाता हूँ।'

'तुम सभी से ऐसा ही कहते हो ?'

'कभी-कभी, जो नहीं लेते, उनको। होटल में एक बिस्कुट पाँच पैसे का है, मैं दस पैसे के चार देता हूँ।'

सोचा : क्या मैं अपनी सिंधू को एक पान नहीं खिला सकता, मैंने किसी सोने के हार या अंगूठी का नहीं, सिर्फ़ एक पान का वायदा किया, सिर्फ़ एक पान का।

XXXX

चाँद ने जैसे अपनी कशिश गंवा दी। पीपल के आसपास से संगीत के सुर जैसे अचानक गुम हो गए। हवा भी जैसे बेमतलब की लगने लगी। पीपल के पत्तों ने जैसे हवा को धक्के देने की कोशिश की, क्योंकि मैं परेशान था।

'आज बेहद उदास लग रहे हो ?' सिंधू ने पूछा

'............'

'क्या तुम्हें ख़ुशी नहीं हुई ?'

'............'

'अच्छा बताओ तुम मेरे लिये क्या लाए हो ?'

'............'

'आज क्या कोई दर्दनाक नॉवल पढ़कर आए हो ?'

मेरे चेहरे पर एक फ़ीकी मुस्कान आ गई।

'मुझसे नाराज़ हो ?' वह बिलकुल क़रीब आई। मैं उसके श्वास गिन पा रहा था।

'तुझसे नाराज़ होकर क्या मैं सुखी रह पाऊँगा ?'

उसने एक गहरी सांस छोड़ी और दूसरे पल कहा - 'मैं आपके लिये केक ले आई हूँ।'

मैं फिर भी चुप रहा।

'लेकिन मेरा पान ?'

'उसे रहने दो, उसमें रखा ही क्या है ?'

'रखा ही क्या है ? क्या नहीं लाए हो ?'

'..............'

'लेकिन चन्दर ? मैंने ऐसा कौन-सा गुनाह किया है, जो तुम मुझे इतनी सज़ा दे रहे हो।'

मेरा मन जैसे टूटने लगा। प्यार की पहली माँग, जो एक भिखारी भी आसानी से चुका सकता था और जो उसने स्नेह के साथ क़बूल भी की थी, मैं पूरी कर नहीं पाया !

मैंने आहिस्ता से कहा - 'सिंधू, तुम केक लाई हो, मैं बिस्कुट ले आया हूँ।'

'बिस्कुट मैं नहीं खाऊँगी।'

तब मैंने मुख़्तसर में उस बिस्कुट को ख़रीदने का कारण विस्तार से उसे बताया।

आवक्, पलक झपके बिना वह मेरा मुँह देखती रही !

तब अचानक चाँद में कशिश लौट आई, पीपल के पेड़ से संगीत के सुर निकलने लगे, हवा ने पीपल को और पीपल ने चाँदनी को चूमना शुरू कर दिया।

उसने बिस्कुट लेते हुए कहा - 'तुमने पान न लाकर अच्छा ही किया, मैंने तुमसे कुछ नहीं माँगा और तुमने मुझे क्या दिया, उसका तुम्हें पता पड़ा चन्दर ? तुमने मुझे ये बिस्कुट देकर वो कुछ दिया है जो राजा हरिश्चंद्र ने ऋषि विश्वामित्र को भी नहीं दिया होगा।'

तुम

जितेन्द्र विसरिया

हँस के रोना फिर हँसना मेरे कस्बे की लड़की तरह
हर जुल्म सहना तुम्हारी आदत तो न थी।
मैंने तुम्हें मस्तिष्क के इतिहास की
किताब पर देखा था।
जॉन ऑफ आर्क और मर्दानी रानी के रूप में
क्या तुम वही हो?
एक पुरूष का संसर्ग इतना दुर्बल बना देता हैं
कि नहीं रहती एक स्त्री–स्त्री।
बन कर रह जाती किसी की माँ, बहन या बीबी।
तुम्हारी आकृति तब करुण न थी
दया तुम्हारा व्यवहार
सहना तुम्हारी आदत तो न थी।
क्या तुम अधूरी थीं...?
या मैं ही झूठा।

अँधेरे में

गजानन माधव मुक्तिबोध

(साहित्यकार गजानन माधव मुक्तिबोध की जन्मतिथि पर श्रद्धांजलि के रूप में उन्हें समर्पित - सम्पादक)

एक रात को बारह बजे, ट्रेन से एक युवक उतरा। स्टेशन पर लोग एक कतार में खड़े थे और ज्यादा नहीं थे। इसलिए ट्रेन से नीचे आने में उसको ज्यादा कठिनाई नहीं हुई। स्टेशन पर बिजली की रोशनी थी; परंतु वह रात के अँधियारे को चीर न सकती थी, और इसलिए मानो रात अपने सघन रेशमी अँधियारे से तंबूनुमा घर हो गई थी, जिसमें बिजली के दीये जलते हों। उतरते ही युवक को प्लेटफॉर्म की परिचित गंध ने, जिसमें गरम धुआँ और ठंडी हवा के झोंके, गरम चाय की बास और पोर्टरों के काले लोहे में बंद मोटे काँचों से सुरक्षित पीली ज्वालाओं के कंदीले पर से आती हुई अजीब उग्र बास, इत्यादि सारी परिचित ध्वनियाँ और गंध थे, उसकी संज्ञा से भेंट की। युवक के हृदय में जैसे एक दरवाजा खुल गया था, एक ध्वनि के साथ और मानो वह ध्वनि कह रही थी - आ गया, अपना आ गया।

युवक झटपट उतरा। उसके पास कुछ भी सामान नहीं था, कोयले के कणों से भरे हुए लंबे बालों में हाथों से कंघी करता हुआ वह चला। पाँच साल पहले वह यहीं रहता था। इन पाँच सालों की अवधि में दुनिया में काफी परिवर्तन हो गया; परंतु उस स्टेशन पर परिवर्तन आना पसंद नहीं करता था। युवक ने अपने पूर्वप्रिय नगर की खुशी में एक कप चाय पीना स्वीकार किया। और वहीं स्टॉल पर खडा हो कर कपबशी की आवाज सुनता हुआ इधर-उधर देखने लगा। सब पुराना वातावरण था। परंतु इस नगर के मुहल्ले में बीस साल बिता चुकने वाला यह पच्चीस साल का युवक पुराना नहीं रह गया था। उसकी आत्मा एक नए महीन चश्मे से स्टेशन को देख रही थी।

टिकिट दे कर स्टेशन पर आगे बढ़ा तो देखता है कि ताँगे निर्जल अलसाए बादलों कि भाँति निष्प्रभ और स्फूर्तिहीन ऊँघते हुए चले जा रहे हैं। युवक ने इसी से पहचान लिया कि यह विशेषता इस नगर की अपनी चीज है।

दुकानें सब बंद हो चुकी थीं, जिनके पास नीचे सड़क पर आदमी सिलसिलेवार सो रहे थे। उनके साथी और उन्हीं के समान सभ्य पशुओं में से निर्वासित श्वान-जाति दुबकी इधर-उधर पड़ी हुई थी। युवक ने पैर बढ़ाने शुरू कर दिए। उखड़ी हुई डामर की काली सड़क पर बिजली की धुँधली रोशनी बिखर रही थी। एक ओर दुकानें, फिर सराय, फिर अफीम-गोदाम, फिर एक टुटपुँजिया म्यूनिसिपल पार्क, फिर एक छोटा चौराहा जहाँ डनलप टॉयर के विज्ञापनवाली दुकान और उसके सामने लाल पंप, फिर उसके बाद कॉलेज! और इस तरह इस छोटे शहर की बौनी इमारतें और नकली आधुनिकता इसी सड़क के किनारे-किनारे एक ओर चली गई थी। दूसरी ओर रेल का हिस्सा, जहाँ शंटिंग का सिलसिला इस समय कुछेक घंटों के लिए चुप था।

युवक को रात का यह वातावरण अत्यंत प्रिय मालूम हुआ। गरमी के दिन थे। फिर भी हवा बहुत ठंडी चल रही थी। सड़क के खुले हिस्से मे जहाँ रेल के तार जा रहे थे, नीम और पीपल के वृक्ष के पत्तों की झिरमिर-झिरमिर के साथ सघन आम के बड़े-बड़े दरख्त दूर से ही दीख रहे थे। उसी मैदान पर, एक ओर, एक नवीन मुहल्ला, शहर के अमीरों, व्यापारियों, अफसरों का उपनिवेश सिकुड़ा हुआ था।

सब दूर शांति थी। रात का गाढ़ा मौन था। युवक के रोजमर्रा के कर्मप्रधान जीवन में रोज रात का एक सोने का समय था, और सुबह के साढ़े आठ के अनंतर जागने का समय था। वैदिक ऋषि-मनीषियों के उषःसूक्त से लगा कर तो अत्याधुनिक छायावादियों के 'बीती विभावरी जाग री, अंबर पनघट ऊषा नागरी' का दर्शन इस युवक ने इस गए पाँच सालों में बहुत कम किया है।

अपने उस कर्म-जटिल क्षेत्र को पीछे छोड़ कर जैसे मनुष्य अपनी अरुचिकर यादों से बचना चाहता हो - यह युवक इस रात में पा रहा था कि वातावरण में पठार-मैदान से उठ कर आने वाली हवा की उत्फुल्ल और मीठी ताजगी के साथ-ही-साथ मानो मनुष्यों की सोई हुई चुपचाप आत्माएँ अपनी गाढ़ नीरवता में अधिक मधुर हो कर वन की सुगंध और वृक्ष के मर्मर में मिल गई हैं।

रेल की पटरियों के पार - रेलवे यार्ड में ही वहाँ के मध्यमवर्गीय नौकरों के क्वार्टर्स बने हुए थे। बाहर ही, जो उसका आँगन कहा जा सकता है; दो खाटें समानांतर बिछी हुई थीं जिनके बीच में एक छोटा-सा टेबल रखा हुआ था। उस पर एक आधुनिक लैंप अपनी अध्ययन समर्पित रोशनी डाल रहा था। एक खाट पर एक पुरुष कोई पुस्तक पढ़ रहा था और दूसरी पर घोर निद्रा थी। लैंप की धुँधली रोशनी में घर के सामनेवाले बाजू पर एक काला-सा अधखुला दरवाजा और बाँस की चिमटियों से बनाए गए बंद बरामदे के लेटे-से चतुष्कोण साफ दीख रहे थे। उस घर की पंक्ति में ही कई क्वार्टर्स और दीख रहे थे, उसी तरह पंक्तिबद्ध खाटें बराबर यथास्थान लगी हुई चली गई थीं।

युवक के मन में एक प्यार उमड़ आया! ये घर उसे अत्यंत आत्मीय-जैसे लगे, मानो वे उसके अभिन्न अंग हों! यही बात उसकी समझ में नहीं आई। इस अजीब आनंदमय भावना ने उसके मन के संतुलित तराजू को झटके देने शुरू कर दिए। वह भावनाओं से अब इतना अभ्यस्त नहीं रह गया था कि उनका आदर्शीकरण कर सके। रोज का कठिन, शुष्क, जीवन उसे एक विशेष तरह का आत्मविश्वास-सा देता था। परंतु... आज...वह बैठने वाला जीव न था। रास्ते पर पैर चल रहे थे। मन कहीं घूम रहा था। दूसरे उसे अत्यंत आत्मीय एकांत, जहाँ उसकी सहज प्रवृत्तियों का खुला बालिश खिलवाड़ हो बहुत दिनों से नहीं मिला था!

उसने सोचना शुरू किया कि आखिर क्यों यह अजीब जल के निर्मलिन सहस्त्र स्रोतों-सी भावना उसके मन में आ गई!

उसको जहाँ जाना था, वहाँ का रास्ता उसे मिल नहीं सकता था। एक तो यह कि पाँच साल के बाद शहर की गलियों को वह भूल चुका था। दूसरे जिस स्थान पर उसे जाना था, वह किसी खास ढंग से उसे अरुचिकर मालूम हो रहा था! इसलिए लक्ष्यस्थान की बात ही उसके दिमाग से गायब हो गई थी।

पैर चल रहे थे या उसके पैर के नीचे से रास्ता खिसक रहा था, यह कहना संभव नहीं, परंतु यह जरूर है कि कुछ कुत्ते-चिर जाग्रत रक्षक की भाँति खड़े हुए - भूँक रहे थे।

उसके मन में किसी अजान स्त्रोत से एक घर का नक्शा आया। उसका भी बरामदा इसी तरह बाँस की चिमटियों से बना हुआ था। वहाँ भी वासंती रातों में नीम के झिरिर-मिरिर के नीचे खाटें पड़ी रहती थीं। युवक को एक धुँधली सूरत याद आती है, उसकी बहन की - और आते ही फौरन चली जाती है। बस चित्र इतना ही। यह मत समझिए कि उसके माता-पिता मर गए! उसके भाई हैं, माता-पिता हैं। वे सब वहीं रहते हैं जिस शहर में वह रहता है।

युवक हँस पड़ा। उसे समझ में आ गया कि क्यों उन क्वार्टरों को देख कर एक आत्मीयता उमड़ आई। मजदूर चालों में, जहाँ वह नित्य जाता है, या उसके अमीर दोस्तों के स्वच्छ सुंदर मकानों में, जहाँ

से वह चंदा इकट्ठा करता, चाय पीता, वाद-विवाद करता और मन-ही-मन अपने महत्व को अनुभव करता है - वहाँ से तो कोई आत्मीयता की फसफसाहट नहीं हुई। हमारा युवक अपने पर ही हँसने लगा। एक सूक्ष्म, मीठा और कटु हास्य।

दूर, एक दुकान पर साठ नंबर का खास बेलजियम का बिजली का लट्टू जल रहा था। सड़क पर ही कुरसियाँ पड़ी थीं, बीच मे टेबल था। एक आरामकुरसी पर लाल भैरोगढ़ी तहमत बाँधे हुए ताँगेवाले साहब बैठे हुए बिस्कुट खा रहे थे। दूसरी कुरसी पर एक निहायत गंदा, पीछे से फटी हुई चड्डी पहने, उघाड़े बदन, लडका कभी बिस्कुटों के चूरे खाने की तरफ या भाप उठाते हुए टेबल पर रखे चाय के कप की तरफ देखता हुआ बैठा था! दूसरी कुरसी पर दूसरे मुसलमान सज्जन रोटी और मांस की कोई पतली वस्तु खा रहे थे और बहुत प्रसन्न मालूम हो रहे थे। जो होटल का मालिक था वह एक पैर पर अधिक दबाव डाले - उसको खूँटा किए खड़ा था, सिगरेट पी रहा था और कुछ खास बुद्धिमानी की बातें करता था जिसको सुन कर रोटी और मांस की पतली वस्तु को दोनों हाथों का उपयोग कर खाने वाले मुसलमान सज्जन 'अल्लाहो अकबर' 'अल्ला रहम करे', इत्यादि भावनाप्लुत उद्गारों से उसका समर्थन करते जाते थे। सिगरेट का कश वह इतनी जोर से खींचता था कि उसका ज्वलंत भाग बिजली की भयानक रोशनी में भी चमक रहा था। उसका हाथ आराम से जंघा-क्षेत्र में भ्रमण कर रहा था।

दुकान के अंदर से पानी को झाड़ू से फेंकने की क्रिया में झाड़ू की कर्कश दाँत पीसती-सी आवाज और पानी के ढकेले जाने की ध्वनि आ रही थी, साथ ही उसके छोटे-छोटे कंकड़ों की भाँति लगातार बाहर उन्नत-वक्र रेखा-मार्ग से चले आ रहे थे। बिजली का लट्टू दरवाजे के ऊपर लगे हुए कवर के बहुत नीचे लटक रहा था जिस पर लगातार गिरने वाले छींटे सूख कर धब्बे बन रहे थे।

इतने में पुलिस के एक गश्तवान सिपाही लाल पगड़ी पहने और खाकी पोशाक में आ कर बैठ गए! वे भी मुसलमान ही थे। उनकी दाढ़ी पर छह बाल थे, और ओठों पर तो थे ही नहीं। चालीस साल की उम्र हो चुकी थी पर बालों ने उन पर कृपा नहीं की थी। नाक उनकी बुद्धि से व्यापक थी, काले डोरे की गुंडी की भाँति चमक रही थी। आँख में एक चुपचाप दयनीयता झाँक उठती। वह कोई मुसीबतजदा प्राणी था - शायद उसे सूजाक था - या उसकी घरवाली दूसरे के साथ फरार हो गई थी! या वह किसी अभागी बदसूरत-वेश्या का शरीर-जात था। उसे न जाने कौन-सी पीड़ा थी जो चार आदमियों में प्रकट नहीं की जा सकती थी। वह पीड़ा-थीड़ा तो दूसरों के आनंद और निर्बाध हास्य को देख कर चुपचाप निबिड़ आँखों में चमक उठती थी! वह इस समय भी चमक रहीं थी, किसी ने उसकी तरफ ध्यान नहीं दिया। उसके सामने क्रमानुसार चाय आ गई और वह फुर-फुर करते हुए पीने लगा।

ताँगेवाले महाशय का ताँगा वहीं दुकान के सामने सड़क के दूसरे किनारे खड़ा था। घोड़ा अपने मालिक की भाँति बड़ा चढ़ैल और गुस्सैल था। एक ओर तो वह बिजली की रोशनी में चमकनेवाली हरी घास को बादशाह की भाँति खा रहा था, तो दूसरी ओर आध घंटे में एक बार अपनी टाँग ताँगे में मार देता था। उसके घास खाने की आवाज लगातार आ रही थी और उसका भव्य सफेद गंभीर चेहरा होटल को अपेक्षा की दृष्टि से देख रहा था।

ताँगेवाले महाशय ने चाय पीनी शुरू की। तगड़ा मुँह था। बेलौस सीधी नाक थी और उजला रंग था। ठाठदार मोतिया साफा अब भी बँधा हुआ था। बोल-चाल निहायत सलीके से भरी थी। चेहरा पर मार्दव था जो कि किसी अक्खड़ बहादुर सिपाही में ही सकता है। आज दिन में उन्होंने काफी कमाई की थी; इसीलिए रात में जगने का उत्साह बहुत अधिक मालूम हो रहा था।

दुकान के अंदर झाड़ू की कर्कश आवाज और पानी की खलखल ध्वनि बंद हो गई। छोटी-छोटी बूँदें टपकानेवाली मैली झाड़ू लिए एक पंद्रह साल का लड़का, एक घुटने पर से फटे पाजामे को कमर पर इकट्ठा किए खड़ा था कि मालिक का अब आगे क्या हुक्म होता है। परंतु बाहर मजलिस जमी थी। लाल साफेवाला सिपाही बड़ी रुचि के साथ उसे सुन रहा था। चाहता था कि वह भी कुछ कहे...।

इतने में इन लोगों को दूर से एक छाया आती हुई दिखाई दी। सब लोगों ने सोचा कि इस बात पर ध्यान देने की जरूरत नहीं! पर धीरे-धीरे आनेवाली उस छाया का सिर्फ पैंट ही दिखाई दिया और कुछ थकी-सी चाल! युवक चुपचाप उन्हीं की ओर आया और हलकी-सी आवाज में बोला 'चाय है?' उत्तर में 'हाँ' पा कर और बैठने के लिए एक अच्छी आरामदेह कुरसी पा कर वह खुश मालूम हुआ। लोगों ने जब देखा कि चेहरे से कोई खास आकर्षक या आसाधारण आदमी मालूम नहीं होता, तब आश्वस्त हो, साँस ले कर बातें करने लगे!

लाल पगड़ीवाला दयनीय प्राणी कुछ बोलना चाहता था! इतने मे उसके दो साथी दूर से दिखाई दिए! उन्हें देख कर वह अत्यंत अनिच्छा से वहाँ से उठने लगा। उसने सोचा था कि शायद है कोई, बैठने को कहे। परंतु लोगों को मालूम भी नहीं हुआ कि कोई आया था और जा रहा है!

'माधव महाराज के जमाने में ताँगेवालों को ये आफत नहीं थी मौलवी सॉब! मैंने बहुत जमाना देखा है! कई सुपरडंट आए, चले गए, कोतवाल आए, निकल गए। पर अब पुलिसवाला ताँगे में मुफ्त बैठेगा भी, और नंबर भी नोट करेगा...' ताँगेवाले ने कहा।

होटलवाला जो अब तक मौलवी साहब से कुछ खास बुद्धिमानी की बात कर रहा था, उसने अब जोर से बोलना शुरू किया! धोती की तहमत बाँधे, बहुत दुबला, नाटे कद का एक अधेड़ हँसमुख आदमी था। वह बहुत बातूनी, और बहुत खुशमिजाज आदमी और अश्लील बातों से घृणा करनेवाला, एक खास ढंग से संस्कारशील और मेहनती मालूम होता था। उसने कहा, 'मौलवी सॉब, दुनिया यों ही चलती रहेगी। मैंने कई कारोबार किए। देखा, सबमें मक्कारी है। और कारोबारी की निगाह में मक्कारी का नाम दुनियादारी है। पुलिसवाले भी मक्कार हैं - ताँगेवाले कम मक्कार नहीं हैं। वह जैनुल आबेदीन-मिर्जावाड़ी में रहने वाला... सुना है आपने किस्सा!'

मौलवी साहब ठहाका मार कर हँस पड़े। 'या अल्लाह' कहते हुए दाढ़ी पर दो बार हाथ फेरा और अपनी उकताहट को छिपाते हुए - मौलवी साहब को एक कप चाय और बिस्कुट मुफ्त या उधार लेना था - आँखों में मनोरंजन विस्मय - कुढ़ कर होटलवाले की बात सुनने लगे।

होटलवाले ने अपने जीवन का रहस्योद्घाटन करने से डर कर बात को बदलते हुए कहा, 'मैं आपको किस्सा सुनाता हूँ। दुनिया में बदमाशी है, बदतमीजी है। है, पर करना क्या? गालियों से तो काम नहीं चलता, क्यों रहीमबक्श (ताँगेवाले की ओर संकेत कर) ताँगेवाले बहुत गालियाँ देते हैं! दूसरे, सड़क पर से गुजरती हुई औरतों को देख - चाहे वे मारवाड़िनियाँ ही हों ढिल्लमढाल पेटवाली, बस इन्हें फौरन लैला याद आ जाती है! यह देख कर मेरी रूह काँपती है। मौलवी सॉब, मेरा दिल एक सच्चे सैयद का दिल है! एक दफा क्या हुआ कि हजरत अली अपने महल में बैठे हुए थे। और राज-काज देख रहे थे कि इतने में दरबान ने कहा कि कुछ मिस्त्री सौदागर आए हैं, आपसे मिलना चाहते हैं। अब उनमें का एक सौदागर आलिम था।'

मौलवी सिर्फ उसके चेहरे को देख रहे थे जिस पर अनेक भावनाएँ उमड़ रहीं थीं, जिससे उसका चिपका - काला चेहरा और भी विकृत मालूम होता था। दूसरे वह यह अनुभव कर रहे थे कि यह अपना ज्ञान बघार रहा है और ज्ञान का अधिकार तो उन्हें है। तीसरे, उन्होंने यह योग्य समय जान कर कहा, 'भाई, एक कप चाय और बुलवा दो।'

चाय का नाम सुन कर कुरसी पर बैठे हुए युवक ने कहा, 'एक कप यहाँ भी।'

पीछे से फटी चड्डी पहने हुए गंदा लड़का ऊँघ रहा था! वह ऊँघता हुआ ही चाय लाने लगा। ताँगेवाला रहीमबख्श बातों को गौर से सुन रहा था। वह जानना चाहता था कि इस कहानी का ताँगेवालों से क्या संबंध है!

होटलवाले ने कहना शुरू किया, उनमें का एक सौदागर आलिम था। उसने हजरत अली का नाम सुन रखा था कि गरीबों के ये सबसे बड़े हिमायती हैं। शानो-शौकत बिलकुल पसंद नहीं करते। और अब देखता क्या है कि महल की दीवारें संगमरमर से बनी हुई हैं, जिसमें ख्वाब-कोहके हीरे दरवाजों के मेहराबों पर जड़े हुए हैं और चबूतरा काले चिकने संगमूसे का बना हुआ है। हरे-हरे बाग हैं और फव्वारे छूट रहे हैं। वह मन-ही-मन मुसकराया। गरमी पड़ रही थी, और रूमाल से बँधे हुए सिर से पसीना छूट रहा था।

हजरत अली के सामने जब माल की कीमत नक्की हो चुकी, तो सौदागर उनकी मेहरबान सूरत से खिंच कर बोला, 'बादशाह सलामत! सुना था कि हजरत अली गरीबों के गुलाम हैं। पर मैंने कुछ और ही देखा है। हो सकता है, गलत देखा हो।'

सौदागर अपना गट्ठा बाँधते-बाँधते कह रहे थे। हजरत अली की आँख से एक बिलजी-सी निकली। सौदागर ने देखा नहीं, उसकी पीठ उधर थी, वह अपने माल का गट्ठा बाँध रहा था!

हजरत अली ने कहा, 'ज्यादा बातें मैं आपसे नहीं कहना चाहता। आप मुझे इस वक्त महल में देखते हैं, पर हमेशा यहाँ नहीं रहता। बाजार में अनाज के बोरे उठाते हुए मुझे किसी ने नहीं देखा है।'

हजरत अली की आँखें किसी खास बेचैनी से चमक रही थीं! वे रेशम का लंबा शाही लबादा पहने हुए थे। उन्होंने उसके बंद खोले। सौदागर ने आश्चर्य से देखा कि हजरत अली मोटे बोरे के कपड़े अंदर से पहने हुए हैं।

सौदागर ने सिर नीचा कर लिया।

सैयद होटलवाले की आँखों में आँसू आ गए। मौलवी साहब ने सिर नीचा कर लिया, मानो उन्हें सौ जूते पड़ गए हों। चाय की गरमी सब खतम हो गई। ताँगेवाले को इसमें खास मजा नहीं आया। युवक अपनी कुरसी पर बैठा हुआ ध्यान से सुन रहा था।

होटलवाले ने कहा, 'असली मजहब इसे कहते हैं। मेरे पास मुस्लिम लीगी आते हैं! चंदा माँगते हैं। मुस्लिम कौम निहायत गरीब है! मुझसे पाकिस्तान नहीं माँगते। मुझसे पाकिस्तान की बातें भी नहीं करते। हिंदू-मुस्लिम इत्तेहाद पर मेरा विश्वास है। लेकिन मैं जरूर दे देता हूँ। 'कौमी-जंग' अखबार देखा है आपने? उसकी पॉलिसी मुझे पसंद है। लाल बावटे वालों का है। मैं उन्हें भी चंद देता हूँ। मेरा ममेरा भाई 'बिरला मिल' में है। खाता कमेटी का सेक्रेटरी है। वह मुझसे चंदा ले जाता है।'

युवक अब वहाँ बैठना नहीं चाहता था। फिर भी, सैयद साहब की बातों को पूरा सुन लेने की इच्छा थी। मालूम होता था, आज वे मजे में आ रहे हैं।

रात काफी आगे बढ़ चुकी थी। होटल के सामने म्युनिसिपल बगीचे के बड़े-बड़े दरख्त रात की गहराई में ऊँघ-से रहे थे, जिनके पीछे आधा चाँद, मुस्लिम नववधू के भाल पर लटकते हुए अलंकार के समान लग रहा था।

नवयुवक जब और चलने लगा तो मालूम हुआ कि उसके पीछे भी कोई चल रहा है। उन दोनों के पैरों की आवाज गूँज रही थी। परंतु चाँद की तरफ (जिसकी काली पृष्ठभूमि भी कुछ आरुण्य लिए थी, मानो किसी मुग्ध रुचिर चेहरे पर खिली हुई लाल मिठास हो), जो घने दरख्तों के पीछे से उठ रहा था, वह युवक मुँह उठाए देखता जा रहा था। विशाल, गहरा काला, शुक्रतारकालोकित आकाश और नीचे निस्तब्ध शांति जो दरख्तों की पत्तियों में भटकने वाले पवन की क्रीड़ा में गा उठती थी।

युवक ऐसी लंबी एकांत रात में अर्ध-अपरिचित नगर की राह में अनुभव कर रहा था कि मानो नग्न आसमान, मुक्त दिशा और (एकाकी स्वपथचारी सौंदर्य के उत्सा-सा, व्यक्तिनिरपेक्ष मस्त आत्मधारा के खुमार-सा) नित्य नवीन चाँद से लाखों शक्ति-धाराएँ फूट कर नवयुवक के हृदय में मिल रही हों। नग्न, ठंडे पाषाण-आसमान और चाँद की भाँति ही - उसी प्रकार, उसका हृदय नग्न और शुभ्र शीतल हो गया है। द्रव्य की गतिमयी धारा ही उसके हृदय में बह रही है। पाषाण जिस प्रकार प्रकृति का अविभाज्य अंग है, मनुष्य प्रकृति पर अधिकार करके भी अपने रूप से उसका अविभाज्य अंग है।

चाँद धीरे-धीरे आसमान में ऊपर सरक रहा था। वृक्षों का मर्मर रात के सुनसान अँधेरे में स्वप्न की भाँति चल रहा था, परस्पर-विरोधी विचित्रगति ताल के संयोग-सा।

जो छाया दो कदम पीछे चल रही थी, वह नवयुवक के साथ हो गई। नवयुवक ने देखा कि सफेद, नाजुक, लाठी के हिलते त्रिकोण पर चाँद की चाँदनी खेल रही है; लंबी और सुरेख नाक की नाजुक कगार पर चाँद का टुकड़ा चमक रहा है, जिससे मुँह का करीब-करीब आधा भाग छायाच्छन्न है। और दो गहरी छोटी आँखें चाँदनी और हर्ष से प्रतिबिंबित हैं। उस वृद्ध मौलबी के चेहरे को देख कर नवयुवक को डी.एच. लॉरेन्स का चित्र याद आ गया! उस अर्द्ध-वृद्ध ने आते ही अपनी ठेठ प्रकृति से उत्सुक हो कर पूछा, 'आप कहाँ रहते है?'

वृद्ध के चेहरे पर स्वाभाविक अच्छाई हँस रही थी। इस नए शहर के (यद्यपि नवयुवक पाँच साल पहले यहीं रहता था) अजनबीपन में उसे इस मौलवी का स्वाभाविक अच्छाई से हँसता चेहरा प्रिय मालूम हुआ। उसने कहा, 'मैं इस शहर से भलीभाँति वाकिक नहीं हूँ। सराय में उतरा हूँ। नींद आ रही थी, इसलिए बाहर निकल पड़ा हूँ।'

होटल में बैठा हुआ यह वृद्ध मौलवी सैयद से हार गया था, मानो उसकी विद्वत्ता भी हार गई थी। इस हार से मन में उत्पन्न हुए अभाव और आत्मलीन जलन को वह शांत करना चाहता था। 'सैयद सॉब बहुत अच्छे आदमी हैं, हम लोगों पर उनकी बड़ी मेहरबानी है।'

नयुवक ने बात काट कर पूछा, 'आप कहाँ काम करते हैं?'

'मैं मस्जिद मदरसे में पढ़ाता हूँ। जी हाँ, गुजर करने के लिए काफी हो जाता है।' उसकी आँखें सहसा म्लान हो गईं और वह चुप हो कर, गरदन झुका कर, नीचे देखने लगा। फिर कहा, 'जी हाँ, दस साल पहले शादी हो चुकी थी। मालूम नहीं था कि वह गहने समेट करके चंपत हो जाएगी। ...तब से इस मस्जिद में हूँ।'

युवक ने देखा कि बूढ़ा एक ऐसी बात कह गया है जो एक अपरिचित से कहना नहीं चाहिए। बूढ़े ने कुछ ज्यादा नहीं कहा। परंतु इतने नैकट्य की बात सुन कर युवक की सहानुभूति के द्वार खुल गए। उसने बूढ़े की सूरत से ही कई बातें जान लीं, वही दु:ख जो किसी-न-किसी रूप में प्रत्येक कुचले मध्यवर्गीय के जीवन में मुँह फाड़े खड़ा हुआ है।

'जी हाँ, मस्जिद में पाँच साल हो गए, पंधरा रुपया मिलते हैं, गुजर कर लेता हूँ। लेकिन अब मन नहीं लगता। दुनिया सूनी-सूनी-सी लगती है। इस लड़ाई ने एक बात और पैदा कर दी है - दिलचस्पी! रेडियो सुनने में कभी नागा नहीं करता। रोज कई अखबार टटोल लेता हूँ। जी हाँ, एक नई दिलचस्पी। किताब पढ़ने का मुझे शौक जरूर है। पर मैं तालीमयफ्ता हूँ नहीं। तो, गर्जे कि समझ में नहीं आती।'

बूढ़ा अपनी नर्म, रेशमी, सितार के हलके तारों की गूँज-सी आवाज में कहता जा रहा था। बातें मामूली तथ्यात्मक थीं, परंतु उनके आस-पास भावना का आलोकवलय था। उसकी जिंदगी में आहत भावनाओं की जो तर्कहीन शक्ति थी, वह उसकी बातों की साधारणता में अपूर्व वैयक्तिक रंग भर देती थी।

युवक को यह अच्छा लगा। प्रिय मालूम हुआ। एक क्षण में उसने अपनी सहानुभूति की जादुई आँख से जान लिया कि कोई असंगत (अजीब) मस्जिद होगी, जहाँ रोज चुपचाप लोग यंत्रचालित-सी कतार में प्रार्थना पढ़ते होंगे। और उसकी सूनी, खाली, दूसरी मंजिल पर यह असंतुष्ट और जीवनपूर्ण अर्द्ध-वृद्ध छोटे-छोटे मैले-कुचैले लड़के-लड़कियों को दुपहर में पढ़ाता होगा। अपने लड़कों की ऊधम से परेशान माँ-बाप उन्हें काम में जुटाए रखने के लिए मदरसे में भेज देते होंगे, और यह अनमने भाव से पढ़ाता होगा और अपनी जिंदगी, दुनिया और दुपहर का सारा क्रुद्ध सूनापन इसके दिल में बेचैनी से तड़पता होगा...।

उसने मौलवी से पूछा, 'अपकी उम्र क्या होगी!'

युवक ने देखा कि मौलवी को यह सवाल अच्छा लगा। उसका चेहरा और भी कोमल होता-सा दिखाई दिया। उसने कहा, 'सिर्फ चालीस। यद्यपि मैं पचास साल के ऊपर मालूम होता हूँ। अजी, इन पाँच सालों ने मुझको खा डाला। फिर भी मैं कमजोर नहीं हूँ। काफी हट्टा-कट्टा हूँ।'

मौलवी यह सिद्ध करना चाहता था कि अभी वह युवक है। जीवन की स्वाभाविक, स्वातंत्र्यर्ण, उच्छृंखल आकांक्षा-शक्तियाँ उसके शरीर में तारल्य भर देती थीं। उसके चलने में, बातचीत में वह अंतिमता नहीं थी जो शैथिल्य और उदासी में पक्वता का आभास पैदा कर देती हैं। उसने चालीस ठीक कहा था और नवयुवक को भी उसकी बात पर अविश्वास करने की इच्छा न हुई।

'ओफ्फो, तो आप जवान हैं।' युवक ने थम कर आगे कहा, 'तो आपका दिमाग लड़ाई पर जरूर चलता होगा...'

'अरे, साहब! कुछ न पूछिए, सैयद साहब मुझसे परेशान हैं।'

'आप 'कौमी जंग' पढते हैं? आपके होटल में तो मैंने अभी ही देखा है।'

'कौमी-जंग तो हमारी मस्जिद में भी आता है! हमारे सबसे बड़े मौलवी परजामंडल के कार्यकर्ता हैं। जमीयत-उल-उलेमा हिंद के मुअज्जिज हैं। वहीं के उलेमा हैं। सब तरह के अखबार खरीदते हैं। यहाँ उन्होंने मुस्लिम-फारवर्ड ब्लॉक खोल रखा है।'

युवक को यहाँ की राजनीति में उलझने की कोई जरूरत नहीं थी। फिर भी, उससे अलग रहने की भी कोई इच्छा नहीं थी। इतने में एक गली आ गई जिसमें मुड़ने के लिए मौलवी तैयार दिखाई

दिया। युवक ने सिर्फ इतना ही कहा, 'किताबों के लिए हम आपकी मदद करेंगे। अब तो मैं यहाँ हूँ कुछ दिनों के लिए। कहाँ मुलाकात होगी आपसे?' 'सैयद साहब की होटल में। जी हाँ, सुबह और शाम!'

मौलवी साहब के साथ युवक का कुछ समय अच्छा कटा। वह कृतज्ञ था। उसने धन्यवाद दिया नहीं। उसकी जिंदगी में न मालूम कितने ही ऐसे आदमी आए हैं जिन्होंने उस पर सहज विश्वास कर लिया, उसकी जिंदगी में एक निर्वैयक्तिक गीलापन प्रदान किया। जब कभी युवक उन पर सोचता है। उनके झरनों ने उनकी जिंदगी को एक नदी बना दिया। उनमें से सब एक सरीखे नहीं थे। और न उन सबको उसने अपना व्यक्तित्व दे दिया था। परंतु उनके व्यक्तित्व की काली छायाओं, कंटकों और जलते हुए फास्फोरिक द्रव्यों, उनके दोषों से उसने नाक-भौं नहीं सिकोड़ी थी। अगर वह स्वयं कभी आहत हो जाता, तो एक बार अपना धुआँ उगल चुकने के बाद उनके व्रणों को चूमने और उनका विष निकाल फेंकने के लिए तैयार होता। उनके व्यक्तित्व की बारीक से बारीक बातों को सहानुभूति के मायक्रोस्कोप (बृहद्दर्शक ताल) से बड़ा करके देखने में उसे वही आनंद मिलता था, जो कि एक डॉक्टर को। और उसका उद्देश्य भी एक डॉक्टर का ही था। उसमें का चिकित्सक एक ऐसा सीधा-सादा हकीम था, जो दुनिया की पेटेंट दवाइयों के चक्कर में न पड़ कर अपने मरीजों से रोज सुबह उठने, व्यायाम करने, दिमाग को ठंडा रखने और उसको दो पैसे की दो पुड़िया शहद के साथ चाट लेने की सलाह देता था। सहानुभूति की एक किरण, एक सहज स्वास्थ्यपूर्ण निर्विकार मुसकान का चिकित्सा-संबंधी महत्व सहानुभूति के लिए प्यासी, लँगड़ी दुनिया के लिए कितना हो सकता है - यह वह जानता था! इसलिए वह मतभेद और परस्पर पैदा होने वाली विशिष्ट विसंवादी कटुताओं को बचा कर निकल जाता था। वह उन्हें जानता था और उसकी उसे जरूरत नहीं थी! दुनिया की कोई ऐसी कलुषता नहीं थी जिस पर उलटी हो जाय - सिवा विस्तृत सामाजिक शोषणों और उनके उत्पन्न दंभों और आदर्शवाद के नाम पर किए गए अंध अत्याचारों, यांत्रिक नैतिकताओं और आध्यात्मिक अहंताओं की तानाशाहियों को छोड़ कर! दुनिया के मध्यवर्गीय जनों के अनेक विषों को चुपचाप वह पी गया था, और राह देख रहा था सिर्फ क्रांति-शक्ति की! परंतु इससे उसको एक नुकसान भी हुआ था! व्यक्ति उसके लिए महत्वपूर्ण नहीं था, व्यक्तित्व अधिक, चाहे वह व्यक्तित्व मामूली ही हो और वह भी तभी जब तक उसकी जिज्ञासा और उष्णता का तालाब सूख न जाए। उसकी उष्णता का दृष्टिकोण भी काफी अमूर्त था क्योंकि उसके व्यक्तित्व का उद्देश्य अमूर्त था। इसलिए अपने आप में व्यक्ति उससे यदा-कदा छूट जाता था, सिवा उनके जो उसकी धड़कनों और रक्त के साथ मिल गए हैं! हकीम मरीजों को फौरन भूल जाते हैं, और मजे के लिए और मर्ज के साथ-साथ वे याद आते है। परिणामत: उसकी सहज उष्णता पा कर व्यक्ति उसके साथ एक हो जाते, अपने को नग्न कर देते; और फिर उससे नाना प्रकार की अपेक्षाएँ करने लगते जो संभव होना असंभव था।

मौलवी जब गली में मुड़ कर गया तो युवक की आँखें उस पर थीं। मौलवी का लंबा, दुबला और श्वेत वस्त्रवृत सारा शरीर उसे एक चलता-फिरता इतिहास मालूम हुआ। उसकी दाढ़ी का त्रिकोण, आँखों की चपल-चमक और भावना-शक्तियों से हिलते कपोलों का इतिहास जान लेने की इच्छा उसमें दुगुनी हो गई।

तब सड़क के आधे भाग पर चाँदनी बिछी थी और आधा भाग चंद्र के तिरछे होने के कारण छायाच्छन्न हो कर काला हो गया था। उसका कालापन चाँदनी से अधिक उठा हुआ मालूम हो रहा था। युवक के सामने समस्याएँ दो थीं। एक आराम की, दूसरी आराम के स्थान की। और दो रास्ते थे। एक, कि रात-भर घूमा जाए - रात के समाप्त होने में सिर्फ साढ़े तीन घंटे थे और दूसरे, स्टेशन पर कहीं भी सो लिया जाए!

कुछ सोच-विचार कर उसने स्टेशन का रास्ता लिया।

उसके शरीर में तीन दिन के लगातार श्रम की थकान थी। और उसके पैर शरीर का बोझ ढोने से इनकार कर रहे थे। परंतु जिस प्रकार जिंदगी में अकेले आदमी को अपनी थकान के बावजूद भोजन खुद ही तैयार करना पड़ता है - तभी तो पेट भर सकता है - उसी प्रकार उसके पैर चुपचाप, अपने दु:ख की कथा अपने से ही कहते हुए अपने कार्य में संलग्न थे।

उसको एक बार मुड़ना पड़ा। वह एक कम चौड़ा रास्ता था जिसके दोनों ओर बड़ी-बड़ी अट्टालिकाएँ चुपचाप खडी थीं, जिसके पैरों-नीचे बिछा हुआ रास्ता दो पहाड़ियों में से गुजरे हुए रास्ते की भाँति गड्ढे में पड़ा हुआ मालूम होता था। बाईं ओर की अट्टालिकाओं के ऊपरी भाग पर चाँदनी बिछी हुई थी।

थकान से शून्य मन में नींद के झोंके आ रहे थे, परंतु एक डर था पुलिसवाले का जो अगर रास्ते में मिल जाए जो उसके संदेहों को शांत करना मुश्किल है! डर इसलिए भी अधिक है कि रास्ता अँधेरे से ढँका हुआ है, सिर्फ अट्टालिकाओं पर गिरी हुई चाँदनी के कुछ-कुछ प्रत्यावर्तित प्रकाश से रास्ते का आकार सूझ रहा है।

मन में शून्यता की एक और बाढ़। नींद का एक और झोंका। रास्ता दोनों ओर से बंद होने के कारण शीत से बचा हुआ है - उसमें अधिक गरमी है। युवक कैसे तो भी चल रहा है! नींद के गरम लिहाफ में सोना चाहता है। नींद का एक और झोंका! मन में शून्यता की एक और बाढ़।

युवक के पैरों में कुछ तो भी नरम-नरम लगा - अजीब, सामान्यत: अप्राप्य, मनुष्य के उष्ण शरीर-सा कोमल! उसने दो-तीन कदम और आगे रखे। और उसका संदेह निश्चत में परिवर्तित हो गया। उसका शरीर काँप गया। उसकी बुद्धि, उसका विवेक काँप गया। वह यदि कदम नहीं रखता हैं तो एक ही शरीर पर - न जाने वह बच्चे का है या स्त्री का, बूढ़े का या जवान का - उसका सारा वजन एक ही पर जा गिरे। वह क्या करे? वह भागने लगा एक किनारे की ओर। परंतु कहाँ-वहाँ तक आदमी सोए हुए थे उसके शरीर की गरम कोमलता उसके पैरों से चिपक गई थी। वहीं एक पत्थर मिला; वह उस पर खड़ा हो गया, हाँफता हुआ। उसके पैर काँप रहे थे। वह आँखे फाड़-फाड़ कर देख रहा था। परंतु अँधेरे के उस समुद्र में उसे कुछ नहीं दीखा। यह उसके लिए और भी बुरा हुआ। उसका पाप यों ही अँधेरे में छिपा रह जाएगा! उसकी विवेक-भावना सिटपिटा कर रह गई; उसको ऐसा धक्का लगा कि वह सँभलने भी नहीं पाया। वह पुण्यात्मा विवेक शक्ति केवल काँप रही थी!

युवक के मन में एक प्रश्न, बिजली के नृत्य की भाँति मुड़ कर मटक-मटक कर, घूमने लगा - क्यों नहीं इतने सब भूखे भिखारी जग कर, जाग्रत हो कर, उसको डंडे मार कर चूर कर देते हैं - क्यों उसे अब तक जिंदा रहने दिया गया?

परंतु इसका जवाब क्या हो सकता है?

वह हारा-सा, सड़क के किनारे-किनारे चलने लगा! मानो उस गहरे अँधेरे में भी भूखी आत्माओं की हजार-हजार आँखें उसकी बुजदिली, पाप और कलंक को देख रहीं हों। स्टेशन की ओर जानेवाली सीधी सड़क मिलते ही युवक ने पटरी बदल ली।

लंबी सीधी सड़क पर चाँदनी आधी नहीं थी क्योंकि दोनों ओर अट्टालिकाएँ नहीं थीं; केवल किनारे पर कुछ-कुछ दूरियों से छोटे-छोटे पेड़ लगे हुए थे। मौन, शीतल चाँदनी सफेद कफन की भाँति रास्ते पर बिछती हुई दो क्षितिजों को छू रही थी। एक विस्तृत, शांत खुलापन युवक को ढँक रहा था और उसे सिर्फ अपनी आवाज सुनाई दे रही थी - पाप, हमारा पाप, हम ढीले-ढाले, सुस्त, मध्यवर्गीय आत्म-संतोषियों का घोर पाप। बंगाल की भूख हमारे चरित्र-विनाश का सबसे बड़ा सबूत। उसकी याद

आते ही, जिसको भुलाने की तीव्र चेष्टा कर रहा था, उसका हृदय काँप जाता था, और विवेक-भावना हाँफने लगती थी।

उस लंबी सुदीर्घ श्वेत सड़क पर वह युवक एक छोटी-सी नगण्य छाया हो कर चला जा रहा था।

मन एक नदी है

चन्द्र कान्त सिंह

मन एक नदी है जिसमें
रीते हाथ हमें जाना है
कुछ मन चाहे सपनों का
आकाश हमें पाना है
यादों की मीठी-मीठी-सी
सुरभित जो फुलवारी है
उसके कोमल फूलों का
एहसास हमें पाना है
यह जीवन भी क्या जीवन है
मरुथल-मरुथल कंटक-कंटक
इस अनगढ़ जीवन के भीतर
ख़ुद के होने का
विश्वास हमें पाना है

पूजते हैं देवियाँ

लक्ष्मी शर्मा

कैसा है समाज
कैसा है परिवार
पूजते हैं लक्ष्मी को
धन की देवी को
पूजते हैं दुर्गा को
शक्ति की देवी को
पूजते हैं सरस्वती को
विद्या की देवी को.

मानते हैं देवी कन्या को
पूजते हैं कन्याओं को
आराधक हैं समस्त देवियों के
फिर क्यों करते वे
हत्या कन्या भ्रूण की
ये निर्ममता कैसी
मारते हैं कोख में खंजर
करा देते हैं अंत!

मृत्यु-पर्व

सुधा गोयल

अम्मा का मर जाना लगभग तय हो चुका है। अम्मा है अस्सी, पाँच पचासी की। भला और कितना जिएगी! अपने सामने भरा-पूरा परिवार है। नाती-पोते, पड़ोते, बेटे-बहुएं। अम्मा-अम्मा कहकर गाहे-ब-गाहे सभी अम्मा के दर्शन कर जाते हैं। क्या पता कब अम्मा की आँख मुंद जाए और मन में अम्मा से न मिल पाने का दुख कचोटता ही रहे! अम्मा जैसे एक तीर्थ हो गई हैं। सब अम्मा के पाँव छूते हैं। अम्मा अपने झुर्रीदार सख्त चमड़ी जैसे पाँवों को (जिन पर खाल की मामूली-सी पर्त है) अपनी तार-तार पीली पड़ी सफेद धोती में छुपाने का असफल-सा प्रयास करती हैं। ऐसे अवसरों पर अपनी दीर्घायु के कारण अम्मा को अक्सर संकुचित हो जाना पड़ता है। पोपले मुँह से आशीष निकलने की जगह अपनी जिंदगी की बेबसी पर उनकी आँखें भर जाती हैं। जुबान तालू से चिपट जाती है, ऐसा नहीं कि अम्मा आशीर्वाद देना नहीं जानतीं या भूल गई हो। कोशिश करने पर बरबस निकल ही पड़ता है।

"पता नहीं, ऊपर वाला कब कागज पूरे करेगा! कहकर अम्मा शून्य में देखने लगती हैं मानो ऊपर वाले को बही-खाता पलटते देख रही हों।

अम्मा की देवरानी अभी कुछ ही दिन पहले मरी हैं। अम्मा भी गई थीं उनके अंतिम दर्शन करने।

वहाँ उपस्थित सभी स्त्री-पुरूष समाज ने उम्मीद भी की कि अम्मा अपनी देवरानी के अंतिम दर्शन कर फूट-फूटकर रो पड़ेगी। लेकिन अम्मा को तो जैसे काठ मार गया।

लोगों की उम्मीद पर पानी फेरते हुए अम्मा ने अपना चार फुटा डंडा अपनी टाँग के सहारे खड़ा किया, जिसका सहारा लेकर अम्मा खटखट करती सारे घर में घूमती हैं। दोनों हाथ जोड़े। गर्दन झुकाई। लोग अवाक् क्या अम्मा सठिया गई हैं। जो अम्मा देवरानी से पाँव दबवाते कभी थकती नहीं थीं, जिनके लिए मुँह से कभी आशीष के दो शब्द नहीं निकलते थे - अम्मा उन्हीं को प्रणाम कर रहीं हैं।

लोगों ने अपनी आँखों से आश्यर्च देखा, फिर आश्चर्य सुना, अम्मा कह रही थीं -

"छोटी मुझसे पहले कैसे चल दी ?"

फिर अम्मा वहीं दीवार का सहारा लेकर बैठ गई। परिवार में अम्मा ही एकमात्र बुजुर्ग बची थीं। वहीं बैठी-बैठी अम्मा अंतिम क्रिया के निर्देश बहुओं को देने लगीं। लोगों को लगा, अम्मा अब बचने वाली नहीं जल्दी ही चल देंगी। एक बार फिर पण्डित जी ने पत्रा खोलकर बाँचा। मृतका पंचकों में पंचतत्व में विलीन हुई थी, जिसका साफ मतलब था कि अभी इस परिवार में चार मृत्यु और होंगी। घर में बुजुर्गों की गणना और उनकी आयु का हिसाब उँगलियों पर लगाया जाने लगा। सबसे पहले सबका ध्यान अम्मा की ओर गया। पंचकों की बात सुनकर अम्मा और भी निरीह हो उठीं। झुर्रियाँ और गहरा गई। आँखें और भी पथरा गईं।

अम्मा को लगता रहा था कि मरना इतना आसान नहीं है। वह जितना मरना चाहतीं उन्हें उतना ही जीना पड़ रहा था। अम्मा के वैधव्य को पूरे तीस बरस हो चुके थे। पिताजी के बाद अम्मा एकाकी, निर्मोही, कर्मठ व नियमित आचार-व्यवहार की हो उठीं। लोगों की बात एक कान से सुनतीं, एक से निकाल देतीं। वह अक्सर कहतीं - "राह चलते भौंकने वाले कुत्ते हुश-हुश करने से भाग जाते हैं।"

"और भागने की जगह काट लें तो....?" कोई-कोई अम्मा से प्रतिवाद कर बैठती।

"फिर ऐसों के लिए मैं अपनी लाठी साथ रखती हूँ।" अम्मा का इशारा समझ सब चुप हो जाते। तब अम्मा दबंग थीं। संघर्षों से मुकाबला कर रही थीं। कौन जानता है कि अम्मा कब अकेली खड़ी-खड़ी खोखली हो गई। एक खोखला खोल मात्र बच पाईं। अब गिरी, तब गिरी सोचते-सोचते जीवन के आठ दशक पार गईं। इतनी उम्मीद न अम्मा को थी, न किसी और को। क्या कोई आदमी सोचता है कि अपनी इस देह के कारण बार-बार कितनी बार उन्हें शर्म से मुँह छिपाना पड़ा है।

जब भी किसी वृद्ध की मृत्यु की खबर सुनतीं या अपने समवयस्कों का जाना देखतीं अथवा किसी बच्चे या युवा की मृत्यु होती, अम्मा बात करने वालों के बीच प्रश्नचिन्ह बन जाती। कितनी निगाहें एक साथ अम्मा की ओर उठतीं। न चाहते हुए भी बहुत कुछ कह जातीं। अम्मा को अपने बुढ़ापे का एहसास और भी तेजी से होता।

आखिर क्या करें अम्मा? अम्मा समझ नहीं पातीं कि अपने ही लोग अपनों के जाने के बारे में इतने उत्सुक क्यों रहते हैं? हमेशा को जाने वाले के साथ क्या दो बोल हमदर्दी के भी नहीं जा सकते ? कोई अपना कहकर छाती पीटकर नहीं रो सकता? कैसा विधान है समाज का ? आदमी के संसार में आने का जश्न, आदमी के संसार से जाने का जश्न ? और आने-जाने के बीच बहता हुआ वक्त। फिर क्या था ? अम्मा किसका मोह करती रहीं ? पुत्र, पुत्री, भाई, बहन, परिवारजन, सबके लिए ममता रखना क्या उन्हीं के हिस्से में आया था ? कैसे पल-पल लोग उनकी मृत्यु का इंतजार, अपने नष्ट होने का इंतजार, इस देह की समाप्ति का इंतजार मात्र उन्हीं को नहीं, सबको है।

वह भी सोचती हैं कि उन्हें मर जाना चाहिए। किसी को कुछ देने जैसा उनके पास है ही नहीं। बेटे-बहुएँ, उनका सामान सलीके से रखने के बहाने कई-कई बार देख चुके हैं। अम्मा के पास कुछ हो तो मिलें। हाँ, अम्मा ने पोतों-नातियों की ससुराल से मिली साड़ियाँ और शाल जरूर इकट्ठे कर रखे हैं। एक नई यात्रा के समय पहने जाने वाले नए कपड़े भी अम्मा ने एक जगह तैयार करके रख दिए हैं।

अम्मा धीरे-धीरे अपनी विदाई का, अपना सामान तैयार करती रहती हैं। कई बार अपने बहू-बेटों को बता भी चुकी हैं। मानो प्राणांत हो और तत्काल बिना समय गँवाए उनकी अंतिम यात्रा भी पूर्ण हो जाए। छोटी के अंतिम संस्कार के समय महज इस कारण ही एक घटें का विलंब हो गया कि उस दिन बाजार की छुट्टी थी और नए कपड़े लाने के लिए किसी की दुकान खुलवानी पड़ी थी। अम्मा ने तभी अपनी बड़ी बहू से कहा था- "देख सुमित्रा, मेरा तो सारा सामान तैयार रखा है। इतनी देर सामान इकट्ठा करने में नहीं लगेगी।"

मुझे लगा अम्मा, अपने सामान का मोह नहीं छोड़ पाई हैं अथवा अपनी अंतिम यात्रा को भारहीन करने का प्रयास कर रही हैं। अम्मा ने पूरे जीवन किसी से कुछ नहीं माँगा, चाहा भी नहीं। फिर अंतिम यात्रा को ही किसी पर बोझ कैसे बनने दें!

सुना था अम्मा ने कि छोटी को पूरी तरह जलने भी नहीं दिया गया था। अधजली को ही गंगा में प्रवाहित कर दिया था। अब न आदमी के आने का इंतजार होता है न आदमी के जाने का। सब जैसे मशीन बन गए हैं। उन्हें सुनी-सुनाई बात याद आई कि डाक्टर आपरेशन द्वारा जल्दी से बच्चा पैदा कर

देती हैं। जैसे मां बच्चे को जन्म देने के सुख और दुख की अनुभूति से दूर रहती हैं, वैसे ही बेटा माँ के अंतिम संस्कार को भी महज एक परंपरा समझ ओढ़ने की जबर्दस्ती करता है।

एक दिन का शोक भी किसी ने नहीं मनाया। सब खूब हँसी करते रहे। अम्मा ने तब ऐलान कर दिया कि उनके साथ तीन दिन के शोक की भी जरूरत नहीं है। एक साथ ही सारे कार्य निबटा लें। अम्मा ये तब कह तो रही हैं, पर निबट कहाँ रही हैं ?

अम्मा के ऊपर अब पहरे हैं। अम्मा को अब जो बेटा साथ ले गया है, अम्मा अब उसी की बहू की इच्छा से उठती-बैठती हैं। अपने अन्य बेटों से मिलने को अम्मा तरस गई हैं। भाइयों के बीच छिड़ी जंग में अम्मा बंदिनी बन गई हैं। कोई अन्य बेटा उनके अंतिम संस्कार में शामिल नहीं होगा, अम्मा जानती हैं। सफाई-सुलह की बात अम्मा की कोई नहीं सुनता।

घर में अम्मा के सामने अम्मा की मृत्यु पर होने वाले जश्न की चर्चा होती है। जाते समय अम्मा ने कुमुद से पूछ लिया था- "कब आएगी अब ?"

"अम्मा तुम्हारी तेरहवीं पर आऊँगी सास-ननद के साथ।" कहते-कहते हँस पड़ी थी कुमुद।

"तेरी इच्छा पूरी हो, कुमुद।" अम्मा ने भर आए गले से कहा था।

ख़ोज

सरोज श्रीवास्तव 'स्वाति'

शांति की ख़ोज में
साधक दीमक बन गए
शांति की ख़ोज में
बहता पानी
काई बन गया
शांति की ख़ोज में
भटके हम-तुम
पत्थर बन गए
शांति?
शांति की ख़ोज में!....

हिन्दू धर्म की प्रासंगिकता

दिलीप चक्रवर्ती

हिंदू धर्म प्रासंगिक या अप्रासंगिक है? मुझे लगता है कि यह सवाल ही अप्रासंगिक है. हिंदू धर्म अतीत में प्रासंगिक था, वर्त्तमान में प्रासंगिक है और भविष्य में प्रासंगिक रहेगा.

धर्म की प्रासंगिकता पर विचार करने से पूर्व यह जानना आवश्यक है की धर्म क्या है? इसकी परिभाषा क्या है और इसकी सीमायें क्या है?

कृष्ण द्वैपायन व्यास ने कहा, "धर्मांग यो बाध्यते धर्मो, न स धर्म कुर्वत्यम तत". उनके अनुसार धर्म है जो धारण करता है, जो समाज को गतिशील बनाता है, जीव जगत को स्थितिशील बनाता है, धर्म मानव को 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' काम करने की प्रेरणा देता है. धर्म समाज के सभी स्तरों में पूर्णतया समन्वित है. हम प्राणी है हमें प्राणी धर्म का पालन करना पड़ता है, हम जीवित हैं, हमें जीव धर्म का पालन करना पड़ता है. इसी तरह शिष्य का धर्म है, गुरु का धर्म है, पिता का धर्म है, पुत्र का धर्म है - सभी का अपना अपना धर्म है. यहां तक कि एक चोर का भी अपना धर्म है - चौर्य धर्म. धर्म जीवन का एक और पर्याय है.

शब्दकोश में दी गई परिभाषा के अनुसार धर्म है - ईश्वर उपासना पद्वति, आचार आचरण, परलोक विषयक तत्त्व व निर्देश. यह धर्म की एक शाब्दिक खंडित परिभाषा है असली तात्पर्य हृदयंगम करने के लिए हमें जाना होगा हिन्दू के व्यापक अर्थ में जहाँ कहा गया है कि - " Dharma, according to Indian heritage, is the justification of ones existense in the cosmic pattern."

हम जीवित रहने के लिए प्रकृति से जो जो ग्रहण करते हैं - सूर्य का उत्ताप, वायु, वर्षा का जल, वनस्पति का दान - सबके लिए कृतज्ञता स्वीकार करना और यथासंभव प्रतिदान करना मनुष्य धर्म है. आक्षेप का विषय है कि ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ सृष्टि, मानव, इस जीवधर्म के पालन में कुंठित या अनिच्छुक है. वह निर्द्विधा से पेड़ काटता है, वन्य प्राणियों का संहार क्षुधा निवारण से अधिक शिकार की उन्मत्तता के लिए करता है, अकारण एवं अमानविक हत्यालीला में मानव मानव का खून करता है, कभी धर्म की आड़ में तो कभी जाति की आड़ में तो कभी राजनीति की दुहाई देकर. यहाँ तक की धर्म की विकृत व्याख्या में मानुष मानुष की हत्या करके धर्मयुद्ध का नाम देते हैं.

वास्तव में धर्म वही है जो विभिन्न धर्मों के मनुष्यों को अपने कर्त्तव्य के विषय में अवहित करता है और सत-नागरिक और सर्वोपरि सत मनुष्य में रूपांतरित करता है. यही हिन्दू धर्म का, हिंद के धर्म का व्यापक आशय है.

व्यापक अर्थ में हिन्दू धर्म :

अधिकांश हिन्दू ईश्वर विश्वासी अर्थक आस्तिक हैं, शेष स्वल्पसंख्यक या तो अज्ञावादी (agmagnostic) या नास्तिक (atheist) हैं, यह हिन्दू धर्मावलम्बियों की उदारता है कि उन्होंने अल्पसंख्यक अज्ञावादी या नास्तिकों को देश से मार नहीं भगाया. चार्वाक, जवाला भारतीय दर्शन के स्वीकृत मनीषी गिने जाते हैं यद्यपि वो किसी देवालय में सिर नहीं झुकाते, प्रचुरतर लोगों का प्रभुत्तर मंगल ही उनका ध्येय है, वो भी हिन्दू हैं. चार्वाक ऋषि भारतीय दर्शन में सगौरव प्रतिष्ठित हैं किन्तु वे थे घोर नास्तिक - ईश्वर, आत्मा, परलोक, पाप-पुण्य - इनमें विश्वास नहीं करते थे. उनकी मूल नीति एक बहुप्रचारित श्लोक में सुपरिचित है - "यावत जीवेत सुखम जीवेत, ऋणं कृत्वा घृतं पीवेत".

सिर्फ नास्तिक हिन्दुओं के प्रति ही नहीं अपितु भारत में आये हुए अन्य धर्मावलम्बी भी इस देश में ससम्मान अपनाये गए. हिन्दू धर्म परम सहिष्णु धर्म है. कोई भी धर्म अन्य धर्मों का असम्मान करने

को नहीं कहता. विधर्मियों को बलपूर्वक अपने धर्म में लाना, और यदि वो नहीं आना चाहें तो हिंसात्मक व्यवहार करने की इज़ाजत कोई भी धर्म नहीं देता.

भारत भूमि में आदिवासी जातियों - संथाल, भील, मारिया में विविध देवी देवतायों की आराधना प्रचलित है. उनके धार्मिक आचरण भी अलग है. वे सदियों से अपने उपास्य देवों की अपने रीतिअनुसार उपासना निर्विघ्न करते आ रहे हैं. बहुसंख्यक हिंदुओं ने कभी आपत्ति नहीं की, बाधा देना तो दूर की बात है. हिन्दू धर्म में विभिन्न संप्रदाय हैं जैसे वैष्णव, शैव, शाक्त्य, गणपतय, इनमें कोई बैरभाव नहीं रहा है. सभी अपने अपने इष्ठ देव की उपासना शांति से करते आये हैं. जैसा की ईसाई धर्मावलम्बियों में कैथोलिक व प्रोटेस्टेंट मतावलंबी हैं. आर्यसमाजी, ब्रह्मसमाजी मूर्ति पूजा के विश्वासी नहीं हैं परंतु वे वेद, उपनिषद् आदि धर्मग्रंथों को मानते हैं.

प्राचीन युग में भारत आये हुए भिन्न धर्मावलम्बियों के प्रति हिन्दू अति सहिष्णु थे. ईरान से विताड़ित पारसी धर्मावलम्बियों ने भारत में आश्रय लिया. वृहत्तर हिन्दू समाज ने इन विदेशी विधर्मियों को सादर गले लगाया. आज भी पारसी धर्मानुरागी भारत में सगौरव विद्यमान हैं. ईसाई धर्म की उत्पत्ति भारत के बाहर हुई है. इस्लाम की तरह यह धर्म भी बहिरागत है. भारत में अंग्रेजी शासन से पूर्व संत फ्रांसिस एक्ज़ेवियर भारत में गोआ से आये थे. इन्होंने भारत के अवनत सम्प्रदायों में प्रभु ईसा की प्रेम वाणी का प्रचार किया और बहुतों का धर्मान्तरण कराया. अतीत के इन धर्मप्रचारकों पर न तो कभी हिन्दुओं ने आक्रमण किया न ही धर्मान्तरित लोगों के प्रति हिंसात्मक व्यवहार किया. यूरोप के अनेक ईसाई भारतीयों से विवाहसूत्र में बंधे, जिनकी संतान संतति एंग्लो-इंडियन के नाम से विख्यात हैं. वे ईसाई धर्म को मानते हुए भी भारत के मूल सांस्कृतिक स्रोत का अंग हैं. ईसाई धर्म के कुछ धर्मानुयायिओं ने भारतीय समाज के प्रति अविस्मरणीय योगदान दिया. इनमें अग्रगणनीय हैं - भगिनी निवेदिता, डेविड हेयर, दीनबंधु एंड्रूज और वर्त्तमान काल की मदर टेरेसा.

मानवतावादी और उदारवादी इन हिन्दू धर्मावलम्बियों की आन्तरिकता के कारण ही लघुसंख्यक पारसी और ईसाई यहाँ से विताडित नहीं अपितु सादर ही गृहित हुए और इस महान देश का अभिन्न अंग बनकर अपनी प्रतिभा की द्युति से भारतीय सभ्यता संस्कृति को द्युतिमान बनाया. यही बात प्राचीन काल में आये इस्लाम धर्मावलम्बियों के लिए भी प्रयोज्य है.

हिन्दू धर्म के व्यापक स्वरुप को समझने के लिए आचार्य क्षिति मोहन सेन का वक्तव्य ध्यान देने योग्य है. उन्होंने कहा "बाहर से जितने भी धर्म आये, उन्होंने यहाँ आकर परस्पर मिल जुल कर धर्म साधना की, समुद्र में आने वाली नदियों की भांति सभी धर्म भारत रुपी सागर में समन्वित हुई हैं. भारत ने किसी भी धर्म के महत्त्व या विशिष्ठता में बाधा नहीं डाली. उत्पीड़ित एक दल क्रिशचन प्रथम शताब्दी में देश छोड़कर यहाँ आये और सादर गृहित हुए, राजाओं ने उन्हें भूवृत्ति दी. उत्पीड़ित पारसियों को यहाँ आदर और आश्रय मिला. मुस्लिम शासन से बहुत पहले मुसलमान साधकों के दलों को यहाँ समादर आश्रय मिला. प्राचीनकाल से ही इस देश में अवैदिक बहुधर्म और संस्कृतियाँ थीं. इन सबका अवलंबन ही हिन्दु धर्म ने किया. वैदिक धर्म कर्मप्रधान है, द्रविड़ धर्म भक्तिप्रधान. इन सब विविध संस्कृतियों और धर्मों के अस्तरण से ही भारत की धर्मभूमि बनी. ईसाई धर्म जैसे ईसा से, इस्लाम धर्म जैसे हज़रत मुहम्मद से बना, वैसे किसी व्यक्ति विशेष या दल विशेष के नाम से भारत के धर्म को चिन्हित नहीं किया जा सकता.

भारत में जितने धर्म आये, सबकी समन्वित साधना ही हिन्दुधर्म है. 'हिन्दुधर्म' जोकि 'हिंद' का धर्म है अर्थात सम्पूर्ण भारत की साधना के समन्वय से प्राप्त है. वैष्णव, शैव, शाक्त्य, गणपतय सभी ब्रह्मान्य धर्म के अंग हैं. किन्तु 'हिंद' का महान धर्म जो कि संक्षेप में हिन्दु धर्म से अभिहित है, वह भारत की मिट्टी में, भारत के जलवायु से वर्धित, विभिन्न साधकों की साधना का सुमिश्रित फल है. इन साधकों

में जहाँ आदिनाथ, बुद्धदेव, गुरु नानक हैं, वहीँ परोक्ष रूप से जरथुस्त्र, ईसा, हजरत मुहम्मद की चिन्दारा भी हैं. इस व्यापक संज्ञा से हिंदू धर्म अतीत में प्रासंगिक था, वर्त्तमान में प्रासंगिक है और मेरा विश्वास है कि भविष्य में भी अप्रासंगिक नहीं होगा.

शिकागो की धर्म महासभा में जब सब धर्मावलम्बी निज निज धर्म के श्रेष्ठत्व प्रमाण में व्यस्त थे, तभी एक विरल प्रतिभाधारी हिन्दू सन्यासी - स्वामी विवेकानंद की सर्वधर्म समन्वय की वाणी सुनकर सारा विश्व श्रद्धावनत् हो गया था. स्वामीजी एकमात्र वक्ता थे जो अंतकरण से सम्पूर्ण श्रोतामंडली को 'brothers and sisters of America' कहकर संबोधित कर पाए थे. यही है हिन्दू धर्म की प्रासंगिकता.

हिन्दुधर्म इतना प्रासंगिक है तभी मुसलमान दराज खान का गंगास्तोत्र एवं अब्दुर रहीम की अधिकांश रचनाएँ संस्कृत में रचित हैं. उनके विचार इतने मर्मस्पर्शी हैं कि हिन्दू मुसलमान का भेद किए बिना समस्त श्रोताओं के 'कर्ण से मर्म तक' को छू गए. इसी कारण से जायसी के मूल पद्मावती और आलासे कृत अनुवाद पढ़कर समझ में आता है कि काफी सारे मुसलमान साहित्यकारों ने कितनी गहरी निष्ठा से पुराण एवं हिन्दू शास्त्रादि का अध्ययन किया था. ब्रजभाषा में रचित बहु वैष्णव साहित्य के सृष्टा जयदेव, चंडीदास, विद्यापति के साथ ही आमिर, मामूद, हबीब, कबीर जैसे भक्त मुसलमान साधक हैं.

भारतीय इतिहास में तीन महानों का उल्लेख है. प्राचीनकाल में अशोक महान, मध्यकाल में अकबर महान और वर्त्तमान काल में गाँधी महान. प्रथमजन बौध्य, द्वितीयजन मुसलमान, तृतीयजन हिंदू थे.

घर के खिड़की दरवाजे खुले रखने से जैसे विशुद्ध हवा प्रवेश करती है वैसे ही कुछ अवांछित कीड़े-मकौड़े भी प्रवेश करते हैं. सतीदाह प्रथा, जातिभेद प्रथा ने भी ऐसे ही हिन्दुधर्म के बहिरंग में प्रवेश करके हमारे विवेक को हिला दिया था. यह सब दु:स्वप्न अब क्रमश: धूमिल हो गए हैं.

सही कीमत

इन्द्रदेव भोला इन्द्रनाथ

पग में घुंघरूँ बाँध लूँ
पायल खनकाऊँ छम-छम
ज़माने की ख़ुशी के लिए
बन्दिशें तोड़ दूँ जीवन की
आम ख़ुशी के लिए

क्योंकि आँसू की कीमत
सस्ती है
और मंहगी है
हँसी-ख़ुशी की क़ीमत
दर-दर तो गम मिलता
और गम लेने वाला
व्यथित हृदय का मनोमालिन्य लिए
जीता आँसू पीकर
जिस किसी ने अपनी ख़ुशी देकर
दूसरों का गम लिया
उसके आँसुओं की सही क़ीमत
किसी ने लगायी नहीं
किसी के होठों पर मुसकानें देखकर
उसका प्रफुल्लित चेहरा देखकर
ख़ासियत उसकी पहचाने बगैर
उसकी आदमियत का
गलत अंदाज़ा लगा लिया
गम खाने वाले की
असलियत जाने बगैर
भूल-भुलैया में आकर.

मांद से ड्राइंग रूम तक

मुरलीधर वैष्णव

तीन बघेरे, दो बब्बर शेर, एक केशरीसिंह, एक भेड़िया तथा दो बारहसिंगे – ये सभी कभी जंगलों में जरूर विचरे होंगे, लेकिन जिस प्रकार इन सभी की खालों में भूसा और मसाला भर कर इन्हें जीवित मुद्रा में सजा कर रखा गया था, उस से यह स्पष्ट था कि संसार में मनुष्य से बढ़कर और कोई खतरनाक जीव नहीं है।

यह एक भूतपूर्व महाराजा के विशाल महल की बैठक का बड़ा कमरा था और मैं एक बघेरे के मुंह को अपने हाथों से सहलाते हुए उस की कांच की बड़ी–बड़ी आंखों में किसी महाराजा या उन के शिकारी सेवक की पाशविकता की परछाई ढूंढ़ रहा था। कुछ अजीब आकर्षण था इस बघेरे की आंखों में। तभी चौकीदार की घंटी बज उठी जो इस बात का संकेत थी कि अब महल देखने का समय पूरा हो गया है। मैं बाहर चला आया।

मेरा रिक्शा अब बाहर शहर के सिविल लाइंस लेन में बने मंत्रियों के भव्य बंगलों के बीच चौड़ी सड़क पर जा रहा था। महल में बंद उन बेजान शेरों व बघेरों ने मेरा पीछा नहीं छोड़ा था। मुझे लगा कि वे सभी वहां से मुक्त हो कर जीवित रूप से मेरे मस्तिष्क में घुस आए हैं। मेरे मन में क्षोभ के साथ साथ एक अजीब सी हलचल मच गई थी।

मैं सोचने लगा था कि समय की करवट ही तो है कि अब राजाओं के महल महल न होकर मंत्रियों के विशाल भव्य बंगले हैं। पहले जब जंगलों में बहुत सारे शेर, बघेरे आदि जानवर थे तब महाराजा एवं उनके शिकारी– सेवक जानवरों का शिकार कर के उनके जिस्म महलों में सजाते ही थे। लेकिन अब तो इनके वंशलोप का ही समय आ गया है। फिर भी कलियुग में कुछ भी तो अनहोनी नहीं। हमारे देश में लावारिस इंसानी लाशों की कमी नहीं है। संभव है, समय की अगली करवट में आज के 'महाराजा' ऐसी लाशों के कंकालों पर कलात्मक रंग करवा कर अपनी अपनी बैठकों के कक्षों को सजाने लगे या फिर कोई रासायनिक मसाला ही लाशों में भरवा कर सजावट के नए आयाम पा लें। एक और बात भी संभव है। हर जीव के विनाश और विकास की प्रक्रिया अभी समाप्त थोड़े ही हो गई है। प्रकृति का मिजाज कभी यों भी बदल सकता है कि सभी शेष बचे शेर, बघेरे शत प्रतिशत आदमखोर बन कर अपनी मांद गुफाओं में इंसानी मुंड सजाने का सौंदर्य बोध प्राप्त कर लें।

रिक्शे से उतर कर मैं चिड़ियाघर की ओर पैदल ही बढ़ गया था। सुना था कि वहां हाल ही में वन विभाग वाले एक भयंकर बघेरे को घायल अवस्था में पकड़ लाए थे। पास ही के एक गांव के पनघट पर उसने एक औरत पर हमला कर दिया था जिस पर गांव वालों ने बरछे व कुल्हाड़ियों से उसे घायल कर जाल में फांस दिया था।

चिड़ियाघर बंद होने में करीब पन्द्रह मिनट ही शेष थे। मैं उस घायल बघेरे की झलक मात्र देखने के लिए आतुर था। पिंजरे के बाहर दर्शकों की काफी भीड़ थी। बघेरा अपने अगले दाएं पैर से जख्मी होते हुए भी इस नए माहौल के प्रति अपना आक्रोश प्रकट करते हुए पिंजरे में टहल रहा था। बीच–बीच में अपनी दहाड़ से निष्फल पुकार भी कर रहा था। शायद महल में बंद कांच की आंखों वाला आकर्षक और भरपूर लंबाई वाला बघेरा राजाओं का युग देख लेने के बाद जनतंत्र–युगीन पिंजरे में पहुंच गया था।

मैं उद्विग्न सा अपने घर की ओर चल पड़ा। अब मैं अपने शयनकक्ष में था। कभी महल में बंद बघेरे की स्थिर किन्तु खौफ़नाक मुद्रा और कभी चिड़ियाघर में बंद घायल बघेरे का आक्रोशपूर्ण चेहरा मेरे मस्तिष्क पटल पर कौंध रहा था। मुझे दोनों में एक अजीब संबंध और समन्वय लगा था। महल में पहुंचने से पहले पिंजरे की कैद कहीं एक संक्षिप्त पड़ाव तो नहीं...? शायद ये बघेरे कुछ कहना चाहते थे, पर सुनने वाला कोई नहीं था।

दिन भर की थकान से मेरी पलकें भारी हो चली थी।

मैं चिड़ियाघर के बघेरे से इंटरव्यू के लिए जा रहा हूं। अब मैं बघेरे के पिंजरे के सामने था। अलसाया सा बघेरा अपने अगले पैर के घाव को मुंह से चाट रहा था।

मेरे परिचय व अभिवादन का उत्तर एक खानदानी उबासी से देते हुए बोला, ''अच्छा तो हमारा भी खयाल आप को आया है।''

''जी हां, आपकी काफी तारीफ़ सुनी थी, इसीलिए हाजिर हो गया,'' मैंने कहा।

बिना समय गंवाए तथा अपने व बघेरे के बीच लोहे की मोटी छड़ों की खिड़की से सुरक्षा महसूस करते हुए मैं सीधे मतलब की बात पर आ गया।

''आप अपना जंगल छोड़ कर औरतों के चक्कर में कैसे पड़ गए ? पनघट की औरतों पर हमला... क्या यह सब सही है ?'' मैंने पहला प्रश्न किया।

बघेरा सहसा गंभीर हो गया, बोला ''आप का मतलब है कि मीलों तक पीने को एक बूंद पानी भी नसीब न हो और हम प्यासे मर जाएं। क्या इंसानों के पनघट से दो घूंट पानी के भी हम हकदार नहीं है ? तीन दिनों का भूखा प्यासा गांव की ओर मैं आ गया। एक भेड़ खाने को मिल गई। केवल पानी पीने कुएं के पास बने हौज की तरफ आ रहा था। उसी समय एक औरत घबराहट व बौखलाहट से मेरे सामने ही दौड़ पड़ी। मैं पशु बुद्धि ठहरा। सोचा, मुझ पर हमला करने आ रही है। बस, उसे हल्का सा पंजा मार दिया। पंजा तो उसकी ओढ़नी में उलझ जाने के कारण मामूली सा लगा था। वैसे मुझे इसका सख्त अफ़सोस है।''

''आप तीन दिनों से भूखे थे ? वह कैसे।'' मैंने पूछा।

आप कभी जंगलों में जाकर असली नजारा देखे तो आपको पता चलेगा कि वहां क्या होता है। बस यह समझ लीजिए कि वहां भूखे–प्यासे मरने से यह कैद अच्छी है। यहां कुछ खाने–पीने को मिल तो जाता है।'' उसने ठंडी आह भरते हुए कहा।

''लेकिन कहां जंगल का एक छत्र राज्य और कहां यह कैद, कुछ बात जंची नहीं।'' मैंने उसे कुछ छेड़ते हुए कहा।

''अब जंगल कहां है. जंगलों को दिन–रात काटने वाले बेरहम ठेकेदार पेड़ों के साथ–साथ जंगली जानवरों को भी काटते रहते हैं। हमारा भोजन खरगोश, हिरण वगैरह तो आप लोगों की दावतों में तरह–तरह के व्यंजनों के रूप में सजते हैं, फिर क्या हम घास खाएं या आपके राजनेताओं की तरह आदमखोर हो जाएं। क्या करें ? कहां जाएं ?'' यह कहते हुए बघेरे का चेहरा उत्तेजना से और अधिक खूंखार हो गया था। अपना पूरा गुबार निकालते हुए वह बोला, ''अजीब आलम है आपके इंसानी राज का। दफ्तर में अफसर पेड़ लगाने की बात करता है और उधर जंगल के जंगल मिली भगत से साफ करवा देता है। फिर जंगल नहीं होंगे तो जानवर कहां से आएंगे।

''एक ओर वन्य प्राणी संरक्षण विभाग हमारी सुरक्षा से संबंधित प्रदर्शनियों का नाटक कर, हमारी लुप्त हो रही जाति पर घड़ियाली आंसू बहाता है तो दूसरी ओर हमें धोखे से मरवा कर हमारी खालों से अपनी तिजोरिएं भरता है। अरे बाबूजी, ऐसा तो हमारे जंगल के कानून में भी नहीं होता। हम भी शिकार पर जाने से पहले अपनी दहाड़ से ऐलान करते हैं कि हम आ रहे हैं, धोखे से तो नहीं मारते हैं किसी को।

मैं अच्छी तरह समझ चुका था कि बघेरा इस दुनिया में अपना पहले नम्बर का शत्रु आदमी को ही मानता है और उससे सख्त नफरत करने के उसके अपने सशक्त तर्क हैं। मैं भी इसी मनुष्य – जाति का होने से बहुत ग्लानि महसूस करने लगा। इसलिए विषय बदलने का असफल प्रयास करते हुए मैंने उससे पूछा, ''आपके परिवार में आपकी पत्नी... बच्चे...''

मेरी बात काटते हुए वह बोला, ''क्यों घाव हरे करते हो बाबू। थे कभी, बच्चे भी थे। पत्नी भी थी। तुम्हारी मनुष्य जाति में कुछ अजीब शौक होता है – दूसरों के घर उजाड़ने का। और जब आदमी आदमी का ही घर उजाड़ देता है तो उसे हमारा घर उजाड़ने का क्या मलाल होगा।''

अचानक बघेरे के चेहरे पर क्रोध, विषाद व घृणा की मिश्रित छाया तैरने लगी। भर्राए गले से वह बोला, ''मैं एक दिन दोपहर में अपने सात–सात दिन के दोनों प्यारे बच्चों को उनकी मां का

स्तनपान करते हुए छोड़ कर शिकार के लिए दूर निकल गया था। लौटने पर मालूम हुआ कि मेरी पत्नी को ठेकेदार के आदमियों ने गोलियों से मार डाला और मेरे दोनों बच्चों को चुरा कर ले गए। आप अनुमान लगा सकते हैं कि मुझ पर क्या गुजरी होगी। बस उस हादसे के बाद मेरी एक ही तमन्ना बची थी, जो पूरी हो गई।''

''वह क्या ?'' मैंने उत्सुकता से पूछा।

उसी रात मैंने जिंदगी की पहली खूनी घात आदम–जाति पर लगाई। शराब के नशे में धुत उस ठेकेदार को मैं मुंह से पकड़ कर घसीटता हुआ दूर ले गया। उसके आदमी भी शराब के नशे में धुत पड़े थे। सो मेरा पीछा नहीं कर सके. अपनी पत्नी व बच्चों के बिछोह का बदला, मैंने उस ठेकेदार का खून पी कर लिया। वैसे उसके खून का स्वाद मुझे पसंद नहीं आया था। शायद यही कारण था कि उसके बाद कई बार कई दिन तक भूखे रहने पर भी तथा मनुष्य जाति के शिकार करने का अवसर प्राप्त होने पर भी मैं आदमखोर नहीं बन पाया। अब भी आदमी के मांस व खून से मुझे घिन्न आती है।'' बघेरा इतना कुछ सहज भाव से कह गया।

उसके इस लोमहर्षक बयान से न जाने क्यों मेरे मन में घबराहट–सी होने लगी। मैं यह सोच भी नहीं सकता था कि किसी मांसाहारी जानवर को आदमी के मांस व खून से इस तरह घृणा हो सकती है। पसंद और नापसंद के अधिकार का प्रयोग तो आदमी को ही जानवरों के मांस के संबंध में करते हुए देखा था। खैर, बघेरे का दिलेर व्यक्तित्व मेरे दिल में गहरा उतर चुका था। उसकी करुण कहानी से मुझे इन्सान के पशुत्व के बारे में सोचने की एक नई प्रेरणा मिल गई थी।

अंत में जाते–जाते मैंने औपचारिकतावश जो प्रश्न किया, उसके उत्तर ने मुझे हिला कर रख दिया। मैंने पूछा, ''चिड़ियाघर देखने आने वाले दर्शकों से तो आपको कोई शिकायत नहीं है?'' अपने पैर के घाव पर बैठ रही मक्खियों को अपनी पूंछ से उड़ाते हुए उसकी आंखों में एक अजीब व्यथा झलकने लगी। वह बोला, ''भले लोग ही आते है यहां लेकिन कल एक मेमसाहिबा कार से आई थीं। बड़ी देर तक मुझे ललचाई निगाहों से देखती रहीं। फिर जैसे कि तारीफ कर रही हो... बोलीं, ''हाय, कितना सुन्दर है। कितना जंचेगा यह मेरे ड्राइंग रूम में, सारी कॉलोनी वाले जलेंगे।''

मैं स्तंभित था। एक सिहरन–सी दौड़ गई थी मेरी रीढ़ में। चलने को उठे मेरे पैर ठिठक गए थे। एक बार फिर मैं खिड़की के पास जा बैठा और बघेरे को ढांढस बंधाते हुए बोला, ''मैं एक स्थानीय पत्र का अदना सा पत्रकार जरूर हूं, लेकिन आपकी रक्षा जी–जान से करूंगा, आप मुझ पर भरोसा रखें।

यह आश्वासन व साक्षात्कार के लिए उसे धन्यवाद देकर मैं बड़े भारी मन से घर लौटा। शून्य में ताकती बघेरे की आंखें और उनमें समाई उसकी व्यथा मुझे बेचैन कर रही थी।

मूड ठीक न होने पर भी दो दिन के बाद मैं राज्य के वन मंत्री की कोठी पर उनके पुत्र के विवाह के उपलक्ष में आयोजित रात्रिभोज में शरीक होने अपने पत्रकार मित्रों के साथ चल पड़ा था।

मस्ती भरा नृत्य चल रहा था। मदिरा ने गले से उतर कर लोगों के दिमाग की ओर चढ़ना शुरू कर दिया था। नृत्य करते–करते अचानक कुछ देख कर मेरा नशा काफूर हो गया। मैं अपने साथी से क्षमा मांगते हुए मंत्री जी के उस विशाल सुसज्जित हाल के कोने में जा पहुंचा जहां विशेष फोकस लाइट्स के दूधिया घेरे में एक असाधारण लम्बाई के सुन्दर बघेरे को उसकी ताजा खाल में मसाला भर कर, अत्यंत स्वाभाविक मुद्रा में खड़ा किया गया था। उसके पैर पर घाव के कारण फटी हुई चमड़ी व उसके व्यक्तित्व से उसे पहचानने में मुझे कोई समय नहीं लगा।

उसका रोबिला चेहरा और मेरी ओर मुखातिब उसकी आंखें कह रही थीं – ''क्यों अपने रंग में भंग डालते हो बाबू, मेम साहिब ने सच ही कहा था न। कितना जंच रहा हूं मैं यहां। हमारी असली जगह अब जंगल की मांद नहीं बल्कि बड़े लोगों के ड्राइंग रूम ही हैं। कितना खुश हूं मैं यहां। न खाने की फिक्र है, न पीने की। सबका आकर्षण बना हर पल मुस्तैदी से खड़ा हूं। और हां, एक बात और सुनो, मेरे बच्चे तो मुझे नहीं मिले, पर देखो मेरी बघेरिन सामने ही कोने में खड़ी है। कितनी महान और रहम दिल है, तुम्हारी मनुष्य जाति। बड़ा आभारी हूं मैं उसका, अब हम शायद कभी नहीं बिछड़ेंगे।''

अपनी अश्रुपूरित आंखों से मैं कभी बघेरे को देखता तो कभी उसकी सुन्दर बघेरिन को। रक्षा का वचन देकर भी बघेरे को न बचा पाने के कारण मैं एक अपराधी की भांति मौन खड़ा था। शायद मेरा ज़मीर भी कहीं सिसक रहा था। डिस्को संगीत और डांस कर रहे जोड़ों को इस बघेरे जोड़े से कोई सरोकार नहीं था। कभी पशु की इन्सानियत और कभी इन्सान के पशुत्व के बारे में सोचते हुए मुझे उस खूनी बंगले में घुटन महसूस होने लगी।

इतने में एक सुसज्जित चपरासी एक सुनहरी ट्रे में व्हिस्की के नए पैग बना कर ले आया। विशेष मनुहार के लिए एक वन अधिकारी अपने बंद गले के काले कोट की जेब पर कोई प्रशस्ति मेडल लटकाए उसके साथ आया था। मुझे वे पैग व्हिस्की के नहीं बल्कि बघेरे के ताजे खून से लबालब भरे लगे। अचानक एक चीख के साथ मैंने उस ट्रे को अपने हाथ के झपट्टे से उछाल दिया।

इसी के साथ मेरी पत्नी के हाथ से सुबह की चाय की ट्रे उछल कर मेरी रजाई और उस पर पड़े ताजे अखबार पर गिर पड़ी। मैं जाग चुका था। खिड़की से सुबह की सुहावनी धूप झांक रही थी। मेरी आंखें चाय से भीगे अखबार के उस भाग पर केन्द्रित थी। जहां एक समाचार – शीर्षक छपा हुआ था, ''चिड़ियाघर में नए बघेरे की रहस्यमय मृत्यु।''

गिरा आँख का पानी

अर्चना कृष्ण

फिर एक बार गिरा आँख का पानी देखो तो,
सुशिक्षित–खोल में छिपी शैतानी देखो तो,
नैतिकता की गाथा गाने वाले चेहरे हैं,
आँखें फाड़ कर दुनिया की हैरानी देखो तो।
औरत की लज्जा चीख रही है घर–घर में,
बद्दिमागों की जुल्मी कारस्तानी देखो तो।
बेटी जैसी बेटी में भी बेटी नहीं दिखती,
चरित्र हीनता की यह अजीब कहानी देखो तो।
बद्जुबान अपनी ही कुकृत्यों से मुँह मोड़े,
लुटी पिता से शर्मसार की दर्द जुबानी देखो तो।
क्या ऐसी ही दुनिया का सपना था आँखों में?
देश की संस्कृति क्यों हुई पानी–पानी देखो तो।
रहा नहीं विश्वास किसी रिश्ते पर आज कहीं,
दुधमुहे बच्चियों की दर्द कहानी देखो तो।
राक्षसों के माद में खूँखार हुए राक्षस,
जागो भारत! घर–घर की बेटी रानी देखो तो।

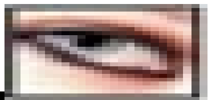

ऐसा क्यों है?

डॉ. अंशु अरोड़ा

एक प्यारे घर की चौखट
जहाँ जन्मी-पली-सँवरी
खेली और की नादानियाँ
वही आँगन बन जाता बेगाना क्यों है?
ढूँढ कर राजा-सा वर
दे आशीष मन-भर
प्रेम से कर विदा
टूटता जन्म का आलिंगन क्यों है?
बँध कर रिश्तों में
बह कर सपनों में
कर होम स्वयं को
फिर, उसका दालान बेबस-बोझिल क्यों है?

ईंट-ईंट कर उसने
जोड़ा जो मकान
'ये किस का घर है?'
ये सवाल अर्धांगिनी से ही क्यों है?
गाईं लोरियाँ
झूलाए झूले
फैलाईं किलकारियाँ
फिर झुनझुना बनी उसकी कहानी क्यों है?
उँगली पकड़ चलाया
यत्न कर पढ़ाया
पल जाता जब लाल
बन अनजान, पूछता सवाल क्यों है?
जहाँ पथरायी आँखें
सुनहरे हुए बाल
वहीं की ज़रो-ज़मीन
उससे रही ताउम्र पराई क्यों है?
रोज़-रोज़
अब क्या बतलाए
क्या नाम? क्या वजूद?
पूछते घर के दरो-दीवार क्यों है?

क्या केवल आकर्षण
सुसज्जित सामान
वस्तु या कोई खिलौना है
उसकी ही छवि यूँ धूमिल क्यों है?
बाहर जब वो काम पे जाए
भेद-भाव अपमान ही पाए
वहशी नज़रें घूरती हर पल
उज्ज्वल-शिक्षा, फिर घोर अंधकार क्यों है?
सहती सभी वार
अनेको-अनेक प्रहार
प्रतिदिन बार-बार
नारी का ही उल्लंघन क्यों है?
कौन-सी चौखट है उसकी?
कहाँ का नाम-नमक-निशान
है उसके अस्तित्व का आइना
हर चौखट आजन्म अचरज में क्यों है?
पीड़ा-प्रताड़णा-विडम्बना
अध-मरा सा जीवन
कभी इस चौखट, कभी उस चौखट
बिन चौखट ये जीव ही क्यों है?
लिखी किसने मेरी किस्मत
जो एक बार धरा पर आए
तो, नहीं गढ़ेगा मुझसा दूजा..
पर, हुआ प्रथम निर्माण ही क्यों है?...
ऐसा क्यों है ?

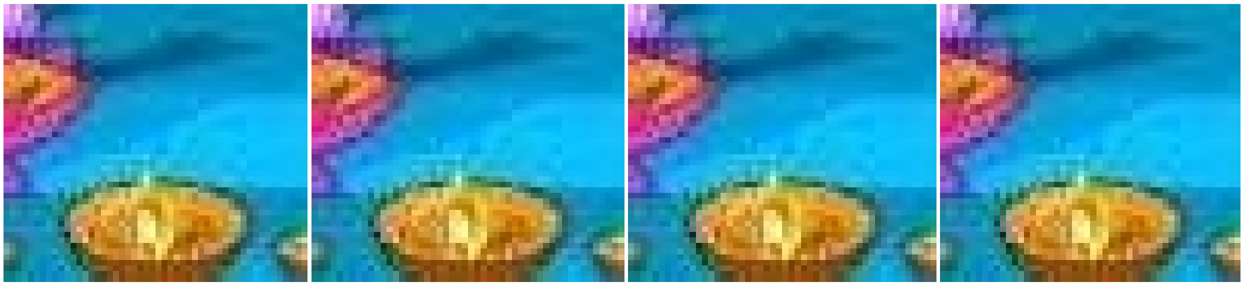

पूजा के बाद

नरेश अग्रवाल

पूजा के बाद हमसे कहा गया
हम विसर्जित कर दें
जलते हुए दीयों को नदी के जल में
ऐसा ही किया हम सबने।
सैकड़ों दीये बहते हुए जा रहे थे एक साथ
अलग-अलग कतार में।
वे आगे बढ़ रहे थे
जैसे रात्रि के मुंह को थोड़ा-थोड़ा खोल रहे हों प्रकाश से
इस तरह से मीलों की यात्रा तय की होगी इन्होंने
प्रत्येक किनारे को थोड़ी-थोड़ी रोशनी दी होगी
बुझने से पहले।
इनके प्रस्थान के साथ-साथ
हम सबने आँखें मूंद ली थी
और इन सारे दीयों की रोशनी को
एक प्रकाश पुंज की तरह महसूस किया था
हमने अपने भीतर।

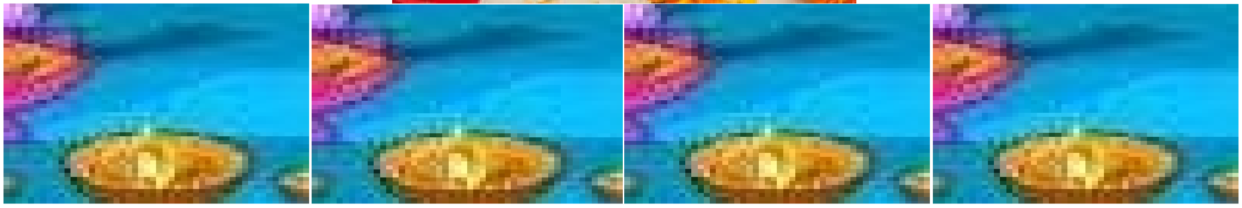

स्नेह ठाकुर की प्रकाशित पुस्तकें

अनमोल हास्य क्षण (नाटक-संग्रह)
जीवन के रंग (काव्य-संग्रह)
दर्दे-ज़ुबाँ (नज़्म व ग़ज़ल संग्रह)
आज का पुरुष (कहानी-संग्रह)
जीवन-निधि (काव्य-संग्रह)
आत्म-गुंजन (आध्यात्मिक-दार्शनिक गीत)
हास-परिहास (हास्य कविताएँ)
ज़ज़्बातों का सिलसिला (काव्य-संग्रह)
The Galaxy Within (A collection of English poems)
अनुभूतियाँ (काव्य-संग्रह)
काव्य-वृष्टि (संकलन एवं संपादन)
पूरब-पश्चिम (आप्रवासी सम्बन्धित आलेख संग्रह)
बौछार (संकलन एवं संपादन)
काव्य हीरक (संकलन एवं संपादन)
संजीवनी (स्वास्थ्य सम्बन्धी लेख)
उपनिषद् दर्शन (अध्यात्मिक)
काव्य-धारा (संकलन एवं संपादन)
काव्यांजलि (काव्य-संग्रह)
अनोखा साथी (कहानी-संग्रह)
कैकेयी : चेतना-शिखा (उपन्यास, राष्ट्रपति भवन पुस्तकालय में संग्रहित)
आज का समाज (लेख-संग्रह)
चिन्तन के धागों में कैकेयी
संदर्भ : श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण (शोध-ग्रन्थ)
कैकेयी : चेतना-शिखा (उपन्यास, द्वितीय संस्करण)
कैकेयी : चिन्तन के नव आयाम
संदर्भ : तुलसीकृत श्रीरामचरितमानस (शोध-ग्रन्थ)

प्रकाशक व वितरक

स्टार पब्लिकेशंज़ (प्रा.) लि.
४/५ बी., आसफ अली रोड
नई दिल्ली - ११०००२
भारत
Star Publishers' Distributors
55, Warren Street
LONDON – W1T 5NW
England

दिल्ली प्रेस की सरिता व अन्य राष्ट्रीय एवं अन्तरर्राष्ट्रीय
पत्रिकाओं में भी रचनाएँ प्रकाशित